संस्कार चन्द्रिका

अथ वानप्रस्थसंस्कारविधिः॥

वानप्रस्थाश्रम करने का समय ५० वर्ष के उपरान्त है जब पुत्र का भी पुत्र हो जावे तब अपनी स्त्री, पुत्र, भाई, बन्धु, पुत्रवधू आदि को सब गृहाश्रम की शिक्षा करके वन की ओर यात्रा की तय्यारी करे यदि स्त्री चले तो साथ लेजावे नहीं तो जेष्ठ पुत्र को सौंप जावे कि इसकी सेवा यथावत् किया करना और अपनी पत्नी को शिक्षा कर जावे कि तू सदा पुत्र आदि को धर्ममार्ग में चलने के लिये और अधर्म से हटाने के लिये शिक्षा करती रहना फिर पूर्व लिखे प्रमाण यज्ञशाला वेदि आदिक सब बनावे, घृत आदि सब सामग्री जोड़ के यथाविधि (ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौ॰) इस मन्त्र से अग्न्याधान और (अयन्तइध्म॰) इत्यादि मन्त्रों से समिदाधान कर के –

ओं अदितेऽनुमन्यस्व—

इत्यादि चार मन्त्रों से कुण्ड के चारों ओर जल प्रोक्षण करके आघारावाज्यभागाहुति ४ और व्याहृति आज्याहुति ४ चार कर के स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण करके स्थालीपाक बनाकर और उस पर घृत सेचन कर निम्न लिखित मन्त्रों से आहुति देवे—

ओं(१)काय स्वाहा। कस्मै स्वाहा। कतमस्मै स्वाहा। आधिमाधीताय स्वाहा। मनः प्रजापतये स्वाहा। चित्तं विज्ञातायादित्यै स्वाहा। अदित्यै मह्यै स्वाहा। अदित्यै सुमृडीकायै स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा। सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा। सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा। पूष्णे स्वाहा। पूष्णे प्रपथ्याय स्वाहा। पूष्णे नरन्धिषाय स्वाहा। त्वष्ट्रे स्वाहा। त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा त्वष्ट्रे पुरू-

(१) इन चारों—मन्त्र और मन्त्रांशों के ऊपर ज्यों का त्यों श्री॰ दयानन्द सरस्वती कृत भाष्य रख दिया है।

पाय स्वाहा * । भुवनस्य पतये स्वाहा । अधिपतये स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा † । ओं आयुर्यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा । प्राणो- यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा । अपानो यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा । व्यानो यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा । उदानो यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा समानो यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा । चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा । श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा । वाग्यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा। मनो यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा । आत्मा यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा । ब्रह्मा यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा । ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा । स्वर्यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा । पृष्ठं यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा । यज्ञो यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा ‡ । एकस्मै स्वाहा । द्वाभ्यां स्वाहा । शताय स्वाहा । एकशताय स्वाहा । व्युष्ट्यै स्वाहा । स्वर्गाय स्वाहा ‖

इन मन्त्रों से एक २ करके ४३ स्थालीपाक की आज्याहुति देके पुनः व्याहृति आहुति ४ चार देकर सामगान करके सब इष्ट मित्रों से मिल पुत्रादिकों पर सब घर का भार धर के अग्निहोत्र की सामग्री सहित जंगल में जाकर एकान्त में निवास कर योगाभ्यास, शास्त्रों का विचार महात्माओं का संग करके स्वात्मा और परमात्मा को साक्षात् करने में प्रयत्न किया करे ।

इति वानप्रस्थसंस्कारविधिः ॥

---

* यजुः अ० २२ । मं० २० ॥

† यजुः अ० २२ । मं० ३२ ॥

‡ यजुः अ० २२ । मं० ३३ ॥

‖ यजुः अ० २२ । मं० ३४ ॥

"वानप्रस्थ संस्कार में आए हुए वेद मन्त्रों का "श्री स्वामी दयानन्द जी कृत भाष्य के अनुसार अर्थ"

"जिन मनुष्यों ने (काय) सुखसाधने वाले के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (कस्मै) सुख स्वरूप के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (कतमस्मै) बहुतो में जो वर्तमान उसके लिये (स्वाहा)। सत्यक्रिया (आधिम्) जो अच्छे प्रकार पदार्थों को धारण करता उस को प्राप्त होकर (स्वाहा)। सत्यक्रिया (आधीताय) सब ओर से विद्यावृद्धि के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (प्रजापतये) प्रजाजनों की पालना करने हारे के लिये (मनः) मनकी (स्वाहा) सत्य क्रिया (विज्ञाताय) विशेष जाने हुए के लिये (चित्तम्) स्मृति को सिद्ध कराने हारा चैतन्य मन और (अदित्यै) पृथिवी के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (मह्यै) बड़ी (अदित्यै) विनाश रहित वाणी के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (सुमृडीकायै) अच्छा सुख करने हारी (अदित्यै) माता के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (सरस्वत्यै) वाणी के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (पावकायै) पवित्र करने वाली (सरस्वत्यै) विद्यायुक्त वाणी के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (बृहत्यै) बड़ी (सरस्वत्यै) विद्वानों की वाणी के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (पूष्णे) पुष्टि करने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (प्रपथ्याय) उत्तमता से आराम के योग्य भोजन करने तथा (पूष्णे) पुष्टि के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (नरन्धिषाय) जो मनुष्यों को उपदेश देता है उस (पूष्णे) पुष्टि करने हारे के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (त्वष्ट्रे) प्रकाश करने वाले के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (तुरीपाय) नौकाओं के पालने (त्वष्ट्रे) और विद्या प्रकाश करने के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (पुरुरूपाय) बहुत रूप और (त्वष्ट्रे) प्रकाश करने वाले के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया-की है वे सुखी होते हैं॥ "(भुवनस्य) संसार की (पतये) पालना करने वाले स्वामी के लिये (स्वाहा)

उत्तम क्रिया (अधिपतये) सबके अधिष्ठाता अर्थात् सब पर जो एक शिक्षा देता है उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया तथा (प्रजापतये) सब प्रजाजनों की पालना करने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया को सब भली भांति युक्त करो ॥३२॥"

"हे मनुष्यो ! तुमको ऐसी इच्छा करनी चाहिये कि हमारी (आयुः) आयु कि जिससे हम जीते हैं वह (स्वाहा) अच्छी क्रिया से (यज्ञेन) परमेश्वर और विद्वानों के सत्कार से मिले हुए कर्म और विद्या आदि देने के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (प्राणः) जीने का मूल मुख्य कारण पवन (स्वाहा) अच्छी क्रिया और (यज्ञेन) योगाभ्यास आदि के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (अपानः) जिससे दुःख को दूर करता है वह पवन (स्वाहा) उत्तम क्रिया से [यज्ञेन] श्रेष्ठ काम के साथ [कल्पताम्] समर्पित हो [व्यानः] सब सन्धियों में व्याप्त अर्थात् शरीर को चलाने कर्म कराने आदि का जो निमित्त है वह पवन [स्वाहा] अच्छी क्रिया से [यज्ञेन] उत्तम काम के साथ [कल्पताम्] समर्पित हो [उदानः] जिससे बली होता है वह पवन [स्वाहा] अच्छी क्रिया से [यज्ञेन] उत्तम कर्म के साथ [कल्पताम्] समर्पित हो [समानः] जिससे अङ्ग २ में अन्न पहुंचाया जाता है वह पवन [स्वाहा] उत्तम क्रिया से [यज्ञेन] यज्ञ के साथ [कल्पताम्] समर्पित हो [चक्षुः] नेत्र [स्वाहा] उत्तम क्रिया से [यज्ञेन] सत्कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (श्रोत्रम्) कान आदि इन्द्रियाँ जोंकि पदार्थों का ज्ञान कराती हैं (स्वाहा) अच्छी क्रिया से (यज्ञेन) सत्कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्पित हों (वाक्) वाणी आदि कर्मेन्द्रियाँ [स्वाहा] उत्तम क्रिया से [यज्ञेन] अच्छे काम के साथ (कल्पताम्) समर्पित हों [मनः] मन अर्थात् अन्तःकरण (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) सत्कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (आत्मा) जीव [स्वाहा] उत्तम क्रिया से [यज्ञेन] सत्कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (ब्रह्मा) चार वेदों के जानने वाला (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) यज्ञादि सत्कर्म के

साथ (कल्पताम्) समर्थ हो (ज्योतिः) ज्ञान का प्रकाश (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) यज्ञ के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (स्वः) सुख (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन (यज्ञ के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (पृष्ठम्) पूछना वा जो बचा हुआ पदार्थ हो वह (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) यज्ञ के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (यज्ञः) यज्ञ अर्थात् व्यापक परमात्मा (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) अपने साथ (कल्पताम्) समर्पित हो ॥ ३३ ॥

भावार्थः-मनुष्यों को चाहिये कि जितना अपना जीवन, शरीर, प्राण, अन्तःकरण, दशों इन्द्रियाँ और सब से उत्तम सामग्री हो उसको यज्ञके लिये समर्पित करें जिससे पापरहित कृतकृत्य होके परमात्मा को प्राप्त हो कर इस जन्म और द्वितीय जन्म में सुखको प्राप्त होवें । ३३ ।"

"हे मनुष्यो! तुम लोगों को (एकस्मै) एक अद्वितीय परमात्मा के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (द्वाभ्याम्) दो अर्थात् कार्य और कारण के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (शताय) अनेक पदार्थों के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (एकशताय) एकसौ, एक व्यवहार वा पदार्थों के, लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (व्युष्टैय) प्रकाशित हुए पदार्थों को जलाने की क्रिया के लिये (स्वाहा) उत्तमक्रिया, और (स्वर्गाय) सुखको प्राप्त होने के लिये (स्वाहा) उत्तमक्रिया, भली भांति युक्त करनी चाहिये ॥ ३४ ॥

भावार्थः- मनुष्यों को चाहिये कि विशेष भक्ति से जिसके समान दूसरा नहीं उस ईश्वर को तथा प्रीति और पुरुषार्थ से असंख्य जीवों को प्रसन्न करें जिस से संसार का सुख और मोक्षसुख प्राप्त होवे ॥ ३४ ॥ "

इति वानप्रस्थसंस्कारव्याख्याप्रकरणम् ।

वानप्रस्थ संस्कार पर एकदृष्टि-

युरुप में अनेक विद्वान् ४० वा ५० वर्ष के पीछे कमाये हुये धन में से निर्वाह करके विद्याभ्यास और पुस्तकरचन में निमग्न हो जाते हैं और उनकी यह आयु हमारे प्राचीन वानप्रस्थ लोगों के समान कई

अङ्गों में मिलती है। जैसे कि एकान्त सेवन, विषयों का त्याग, विद्या-वृद्धि और विचार। पर इतना करते हुए भी वे अर्द्धवानप्रस्थी हैं पूरे नहीं कारण कि उनको आत्मचिन्तन और और ब्रह्मचिन्तन का सुअवसर बहुत कम मिलता है। यदि आत्मचिन्तन और ब्रह्मचिन्तन का भी उनको अवसर मिलता तो एन्ड्रोजेकसन डेविश और कौन्टटालस्टाय के समान पुरुष के प्रत्येक गांव वा नगर में एक दो वानप्रस्थी मिलते पर ऐसा न होने से वहां केवल पदार्थ विज्ञान की वृद्धि करने वाले एडिसन से अनेक अर्द्धवानप्रस्थी विद्यमान हैं। इन पदार्थविज्ञान की वृद्धि करने वाले महान् पण्डितों के प्रभाव से भौतिक चमत्कार, ग्रेमोफोन (शब्दधारकयंत्र) के रूप में तो बहुत निकल रहे हैं पर इनसे जीवन और मृत्यु का रहस्य नहीं खुला और नहीं खुल सकता है। सेविनसस्टालने एक पुस्तक अंग्रेजी में लिखी है जिस का नाम यह है कि "४५ वर्ष के मनुष्य को क्या जानना चाहिये" इस पुस्तक के २८४ पृष्ठ के अन्दर लेखकने यह बातें दर्शाई हैं कि:-

(१) शिर और मुंछ डाढी में श्वेत बालों का आना प्रकट कर रहा है कि अब अवस्था बदल चली।

(२) स्मृति का कम हो जाना।

(३) चक्षु आदि इन्द्रियों का निर्बल हो जाना।

(४) पहिले समान श्रम न कर सकना और शीघ्र थक जाना

(५) दातों में विकार का होना

(६) विषय वासना की न्यूनता

(७) पैतृक रोगों का वृद्धि पाना

(८) पेशाब का धीमे २ आना

फिर डाक्टर विलियम एकटन आदि अनेक डाक्टरों के प्रमाणों से सिद्ध किया है कि ५० वा ६० वर्ष में पुरुष प्रजा उत्पन्न करने के योग्य नहीं रहता—पृष्ठ ७१ पर लिखा है कि इस अवस्था में विशेष मानसिक

चिन्ता नहीं करनी चाहिये और धन सम्बन्धी जोखमयुक्त काम नहीं करने चाहियें मुक़द्मे बाजी छोड़ देनी चाहिये फिर निद्रा भर कर लेनी चाहिये और पृष्ठ ७५ पर प्राणायाम करने को लिखा है। यूरुप के लोग डाक्टर गार्डनर आदि लिखते हैं कि ५० वर्ष की आयु में मनुष्य को स्त्री समाज सर्वथा त्याग देना चाहिये नहीं तो आयु घट जावेगी। स्टाल महोदय की उक्त पुस्तक बतला रही है कि ५० वर्ष की आयु में विषयों को छोड़ चिन्तारहित होने की आवश्यकता "के लोग" आदि अनेक डाक्टर बतला रहे हैं।

पर यदि कोई ६० वर्ष की आयु में पेनशन ले कर भी यूरुप में विवाह करले तो उस को कोई दण्ड नहीं मिलसकता। यदि ५० वर्ष की आयु में वहाँ लोग उक्त बातों पर न चलें तो समाज कुछ कर नहीं सकता। प्रायः १०० में ८० मनुष्य यूरुप में धन कमाते ही मरते हैं।

ऋषियों के समय में वानप्रस्थ, वृद्ध के लिये इतना ही जरूरी था जितना कि युवा के लिये विवाह, और उस समय यह ऐच्छिक विषय न था और नहीं अर्द्धरूप में था जैसा कि ऊपर लिख आये। प्राचीन आर्यों ने इसको संस्कार माना था जिसका करना या तो ५० वर्ष की अवस्था में या पोते पोती के होने पर पुरुष स्त्री दोनों के लिये ज़रूरी था। जो बातें आज युरुप में वृद्धों को करनी डाक्टर लोग श्रेष्ठ बतलाते हैं उनके पालन के लिये उनको प्रतिज्ञा करनी होती थी जैसी प्रतिज्ञा वानप्रस्थ की विधि दर्शा रही है। आत्मचिन्तन और ब्रह्मज्ञान के शास्त्र जिनके मनन से जीवन मृत्यु के भेद खुलते थे वेद और उपनिषद् के रूप में यहाँ विद्यमान थे—जिन पर मनन करने से वानप्रस्थी, जीवन के उद्देश को सफल कर सकते थे। वानप्रस्थ संस्कार की विधि में जो "काय स्वाहा" इत्यादि अनेक वाक्य कहकर हवन किया जाता था उन पर विचार करने से ज्ञात होता है कि वान प्रस्थी का उद्देश्य शान्ति की जिज्ञासा और प्राप्ति थी।

इस संस्कार के अन्त में ऋषि दयानन्द जी ने जो भाषा में लिखा है

वह प्रत्येक "वानप्रस्थ,, धारण करने वाले को १० वार विचार पूर्वक पढ़ना चाहिये—वह यह है किः—

"सब इष्ट मित्रों से मिल पुत्रादिकों पर सब घर का भार धरके अग्निहोत्र की सामग्री सहित जंगल में जा कर, एकान्त में निवास कर योगाभ्यास, शास्त्रों का विचार, महात्माओं का संग करके स्वात्मा और परमात्माको साक्षात् करने में प्रयत्न किया करें"

मूल "संस्कारविधि" में मनुस्मृति के लेखानुसार ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य वानप्रस्थ को भिक्षाचरण से निर्वाह करने का उपदेश है।

युरुप निवासी पुराने आर्यों के इस संस्कार पर बहुत हँसते हैं और आक्षेप के रूप में कहा करते हैं कि—

(१) मनुष्यों को जंगली बनाना
(२) भिखारी बनाना
(३) आलसी बनाना

इनके बिना इस संस्कार का क्या उद्देश्य है? हम इस के उत्तर में कहेंगे कि वह (१) जंगली नहीं बनाते थे, किन्तु जिस (Goddess Nature) नेचर देवी की उपासना के तुम रात दिन मौखिक गीत गाते हो। उसी सृष्टि देवी की गोद में वह नगर, ग्राम और कृत्रिम कारखानों के शोर बकोर से बच कर स्थान पाते और विचार द्वारा नेचर और नेचर की वशकर्त्री शक्ति ब्रह्म का अनुभव करके लोगों के जीवन को अपने सच्चे जीवन से उन्नत करते थे।

(२) भिखारी तो उसको कहते हैं जो आलसी होकर कुछ उपयोगी काम न करे और दूसरों से माँग कर खावे। ऋषियों ने सामाजिक उन्नति यहाँ तक की थी कि अभी तक युरुप आदि में कहीं भी उसका चिन्ह नहीं मिलता। जिस प्रकार एक परिवार का मनुष्य यदि दूकान वा

कारखाने में काम करता हुआ रोटी खाने के समय, अपने घर से रोटी ले जावे तो उसको कोई युरुप वासी भिखारी नहीं कहेगा उसी प्रकार जिन्होंने ग्राम वा नगर को परिवार बना रक्खा था उनका अधिकार था कि ग्राम वा नगर वासियों के कल्याण के लिये अपनी तपस्या के फलों को मुफ्त देते हुए अपने गाम व नगर रूपी गृह से रोज़ खाने के समय पर अपना भोजन ले जावें।

इसके अतिरिक्त जो गृहस्थ आज वानप्रस्थ हुआ वह आज से पूर्व २५ वर्ष तक ग्राम वा नगर के ब्रह्मचारियों, वानप्रस्थों और संन्यासियों को रोज़ भिक्षा देता रहा है। आज उसके वानप्रस्थ होने पर उसका परिवार तथा ग्राम के सब गृहस्थ उसको अन्न देना अपना कर्तव्य समझेंगे।

परस्पर कुटुम्ब सहायक और लाइफ इन्शोरेन्स कंपनियां भी जिस काम को पूर्ण रूप से आज तक नहीं कर पाई उसे धर्मात्मा आर्यों की वह प्रथा, पूर्ण करती थी जिसको " "भिक्षाचरण" कहते हैं।

कल्पना करो कि बम्बई में २०० बी० ए० पास मनुष्य हैं और बम्बई की मनुष्यपालयित्री समिति (म्युनिसिपल कमेटी) यह पास करदे कि यह बी० ए० रिसर्च वा अन्वेषण का काम करेंगे- यह निर्लोभी हैं इन को वेतन की ज़रूरत नहीं। केवल निर्वाहमात्र अन्न वस्त्र इनको मिला करे और वह इस प्रकार से कि जब चाहेंगे तो दिन में एक दो वार जिस किसी के मकान पर सूचना दें वही दो समय का अन्न इनको रोज दिया करे। इनके बहाने से कोई और न ले जावें इसलिये अमुक प्रकार का वेष इनको सभा से दिया गया है, जो दूसरा विना दण्डधारण नहीं करसकता बताओ ऐसी दशा में लोग उन २०० बी० ए० पास विद्वानों के त्याग और बम्बई के सर्व गृहस्थों के उदार भाव की स्तुति करेंगे वा नहीं? क्या कोई उन रिसर्च (आन्दोलन) का काम करने वालों को आलसी वा भिखारी कहेगा? कदापि नहीं। इसी प्रकार पुराने वानप्रस्थी, जन मण्डल के भूषण और जनमण्डल के सच्चे सेवक होते थे, वह नगर के लिये जीते थे और नगर का अन्न उनकी सहायता के लिये तैयार था। उनको अन्न मँगाने, संभालने आदि का श्रम न करना पड़े इसलिये नगर वासियों से तैयार अन्न लेजाते थे। उनका आना डेप्युटेशन के रूप में था और उनको अन्न देना प्रत्येक अपना धर्म (ड्यूटी) समझता था।

अव्याख्यात संस्कृत भाग की संन्यास प्रकरण की क्रमसे व्याख्या

जिससे अधर्म के कामों को सर्वथा दूर कर देते हैं, वा जिस संस्कार से मनुष्य अच्छी तरह नित्य सत्कर्मों में ही स्थिर हो जाता है, वह "संन्यास" संस्कार कहलाता है, संन्यास वाले को संन्यासी कहते हैं। सन्यास संस्कार की विधि और मूल मन्त्रादि, वैदिक प्रेस अजमेर की मुद्रित मूल "संस्कार विधि" में देख लेना चाहिये ग्रन्थ-विस्तर भय से हमने यहाँ नहीं रक्खा।

(भुवनपतये) समस्त ब्रह्माण्ड के स्वामी के लिए (भूतानां, पतये) पञ्च महाभूतों के पति के लिए (प्रजापतये) सब प्राणियों के पालक के लिए (स्वाहा) सुहुत हो वा सत्यक्रिया हो।

(ब्रह्म) वेद से ही (होता) होता का स्वरूप बतलाया जाता है (ब्रह्म, यज्ञः) वेदही यज्ञ का विधायक है (ब्रह्मणा) वेद से ही (स्वरवः, सिताः) परिमित यज्ञस्तम्भ निरूपित होते हैं (ब्रह्मणा) वेद से ही (अध्वर्युः) यजुर्वेद का ज्ञाता (जातः) बनाया जाता है (ब्रह्मणः, अन्तः) वेद के भीतर ही (हविः) होम के योग्य पदार्थ समूह, विधि रूप से (हितम्) स्थित है।

(ब्रह्म) वेद ने ही (घृतवतीः स्रुचः) घृत वाली स्रुक्, घृत डालने के साधन बतलाई हैं (ब्रह्मणा) ब्रह्म-वेद ने ही (उद्, हिता) उत्कृष्ट कल्याण करने वाली (वेदिः) यज्ञ वेदि को बतलाया है (ब्रह्म) वेद ने ही (यज्ञस्य, सत्रं, च) बड़े और छोटे सब प्रकार के यज्ञ बतलाए हैं, और (ये, हविष्कृतः ऋत्विजः) जो हवि देने वाले ऋत्विग् हैं वे भी वेदोपदिष्ट हैं (शमिताय) ऐसे शान्ति देने वाले वेदोपदेश के लिए (स्वाहा) यह हमारी सत्य क्रिया हो॥

हे इन्द्र ऐश्वर्यशालिन् ! परमात्मन् !

(अंहोमुचे) दुःख वा पापों के दूर करने वाले (प्र, भरे) अत्यन्त पोषण करने वाले आप में, मैं (मनीषाम्) अपनी बुद्धि को (आ) सब तरफ से लगाता हूं। और (सु, त्रात्मणे) श्रेष्ठ रक्षक उसी परमात्मा में (सु, मतिम्) सुन्दर बुद्धि का (आ, वृणानः) अच्छे प्रकार प्रवेश करता हुआ, मैं चाहता हूं कि आप (इदं, हव्यम्) इस हवनीय पदार्थ को (गृभाय) ग्रहण करें और आपकी कृपा से (यजमानस्य) मुझ यजमान के (कामाः) मनोरथ (सत्याः, सन्तु,) सत्य-पूर्ण हों ॥

हे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशको ! मैं (अंहोमुचम्) दुखों को दूर करने वाले (यज्ञियानां वृषभम्) यज्ञ के हितकारक पदार्थों में श्रेष्ठ (अध्वराणाम्) सब प्रकार के यज्ञों में (प्रथमम् विराजन्तम्) मुख्यरूपसे शोभित होने वाले (अपां, नपातम्) अपने वेग से जल की रक्षा न करने वाले अर्थात् जल के शोषक प्राण वायु को (धिया) अपने बुद्धि बल से (हुवे) अच्छे प्रकार ध्यान में रखने की प्रतिज्ञा करता हूं (इन्द्रेण) परमात्मा ने (मे) मुझे (ओजः, इन्द्रियम्) प्रकाशक-इन्द्रिय मन (दत्तम्) देदिया है।

(यत्र) जिस ब्रह्मलोक में (ब्रह्मविदः) ब्रह्म- ईश्वर के जानने वाले लोग (तपसा, सह) मनो निग्रह आदि तप के साथ (दीक्षया) संन्यासाश्रम में पालनीय नियमों के कारण (यान्ति) जाते हैं (तत्र) वहाँ ही (मा) मुझे (अग्निः) पूजनीय परमात्मा अपनी कृपा से (नयतु) पहुंचावे और (अग्निः) वही परमात्मा (मे) मुझे (मेधां, दधातु) ब्रह्म लोकप्राप्तिकी शुद्ध बुद्धि को देवे (अग्नये) अग्नि के लिए (स्वाहा) सुहुत हो।

"यत्र" इत्यादि पूर्ववत् ! (वायुः) नित्य ज्ञानवाला (प्राणान्) प्राणों को (सूर्यः) सूर्यवत् जगत् का प्रकाशक (चक्षुः) देखने की शक्ति को (चन्द्रः) चन्द्र-वत् आल्हादक (मनः) मनन शक्ति को (सोमः) सोम लता की तरह शान्ति देने वाला (पयः) दुग्ध आदि उत्तम पदार्थों को (इन्द्रः) विशिष्ट ऐश्वर्य

वाला (बलम्) बलको (आपः) जगत् का कारणीभूत सूक्ष्म तत्वविशेष व्यापक परमात्मा (अमृतम्) मुक्ति को (ब्रह्मा) चारों वेदों का ज्ञाता (ब्रह्म) वेद ज्ञान को (दधातु) देवे, इत्यादि रूप से सर्वत्र सम्बन्ध कर लेना चाहिये ॥

(प्राणापान व्यानेत्यादि) हृदयदेशवर्ती वायु-प्राण, गुद देश वर्ती वायु-अपान, सर्व शरीर संचारी वायु—व्यान, कण्ठ देश में रहने वाला वायु-उदान, नाभिदेशस्थ-वायु समान, ये पांचों मेरे वायु, ईश्वर करे कि प्राणायामद्वारा (मे) मेरे (शुध्यन्ताम्) शुद्ध हों और (अहम्) मैं (ज्योतिः) जगत् के सम्बन्ध को छोड़ के प्रकाश स्वरूप और (विरजाः) रजोगुण रहित, तथा (वि, पाप्मा) पापों के मूल तमोगुण से रहित ईश्वर करे कि (भूयासम्) होऊं ॥

(वाङ् मन इत्यादि) वाणी, मन, नेत्र, कर्ण, जिह्वा, नासिका, वीर्य, बुद्धि, अभिप्राय, विचार, ये सब (मे) मेरे (शुध्यन्ताम्) शुद्ध हों० शेष पूर्ववत्

(शिरः पाणीत्यादि) मस्तक, हाथ, पैर, पीठ, जाँघे, घुटने, पेट, मूत्रेन्द्रिय, मलेन्द्रिय; ये सब० शेष पूर्ववत् ॥

(त्वक्चर्मेत्यादि) त्वगिन्द्रिय, चाम, मांस,रुधिर, मेद(चर्वी) मज्जा (हड्डियों का सार) स्नायु (नाड़ी) अस्थि (हड्डी) ये सब० शेष तुल्य है ।

(शब्द स्पर्शेति) शब्द आदि पांच, ज्ञानेन्द्रियों के विषय मेरे शुद्ध हों ।

(पृथिव्यबिति) पृथिवी आदि पांच महाभूत मेरे लिए शुद्ध हों ।

(अन्नमयेति) अन्नमयादि* पांच कोश मेरे लिये शुद्ध हों ।

(विविष्टये) विशेषेण विष्टि र्व्याप्तिर्यस्य ब्रह्मणः(इति सायणाचार्यः) विशेष करके व्याप्त परमात्मा के उद्देश से (स्वाहा) सुहुत हो ।

---

* स्थूल शरीर—अन्नमय कोष, पांच कर्मेन्द्रियों सहित पांच प्राण —प्राणमय कोष, पांच ज्ञानेन्द्रियों सहित मन मनोमय कोष, पांच ज्ञानेन्द्रिय सहित निश्चयात्मक बुद्धि वृत्ति—विज्ञानमय कोष, और सुषुप्ति का आनन्द—आनन्दमय कोष कहलाता है ; ये पांचों जीव के स्वरूप को ढके हुए हैं इस लिये इन्हें कोष (मियान) संज्ञा दी गई है ।

(कषोत्काय) नामरूपकर्म्मात्मकः कार्यप्रपञ्चः कषः (इति सायणाचार्यः) सृष्टि की आदि में जगत् के करने में उत्कण्ठित परमात्मा के लिए०

(उतिष्ठ पुरुष०) हे पुरुष ! शरीर में सोने वाले जीवात्मन् ! तू (उतिष्ठ) आलस्य प्रमादादि दोषों को छोड़ कर परमात्मा के अनुग्रह के लिए उद्योगी बन और हे (हरित) सब प्रतिबन्धों (रुकावटों) को दूर करने वाले ? (लोहित) रजो गुण के सम्बन्ध से रक्तिमा धारण करने वाले ! (पिङ्गलाक्षि) तमो गुण के सम्बन्ध से अपने ज्ञान को कलुषित करने वाले ? मेरे आत्मन् ! अपने ही लिए शुद्धि–प्राकृतिक सम्बन्धराहित्य रूप शुद्धि को (देहि २) दे दे ! अर्थात् विना विलम्ब के दे और (ददापयिता) लोगों के लिए यथार्थ ज्ञान का देने वाला हो जिससे (मे) मेरी अपनी ही चित्तवृत्तियाँ (शुध्यन्ताम्) शुद्ध हो जावें० ॥ शेष पूर्ववत् । (ओम्) मैं ओम्शब्दप्रतिपाद्य वस्तुमय हो जाऊँ० ।

(मनो वागिति) मन, वाणी, शरीर, और काम मेरे शुद्ध हों० ।

(अव्यक्तभावै रिति) जिन का स्वरूप प्रकट नहीं है ऐसे अहङ्कार अभिमानादि दोषों से हटकर (ज्योतिः) प्रकाश मय होऊँ० ।

(आत्मा ०) मेरा जीवात्मा शुद्ध हो ० ।

(अन्तरात्मा) मेरा मन शुद्ध हो० ।

(परमात्मा) मेरे लिये परमात्मा प्रसन्न हो० ।

(ध्रुवाय, भूमाय) निश्चल और सब से बड़े परमात्मा के लिए० ।

(ध्रुवक्षितये) स्थिर ज्ञान वाले के लिए (अच्युतक्षितये) एक रस हो कर जगत् में निवास करने वाले ईश्वर के लिये० इत्यादि ४९ मन्त्र तक । शेष शब्द ईश्वर और ईश्वरीय वस्तुओं के वाचक हैं–स्पष्टार्थक हैं ।

हे परमात्मन् ! तू (विश्वमूर्तिषु, भूतेषु) मूर्तिधारी सब प्राणियों वा भूतों में (गुहायाम्) मन रूप गुहा में (अन्तः, चरसि) भीतर व्याप्त है

(त्वम्) तूही (यज्ञः इत्यादि) यज्ञ, वषट्कार, इन्द्र, रुद्र, विष्णु, ब्रह्म, प्रजापति, आपः, ज्योतिः, रस, अमृत ब्रह्म, भूः, भुवः, स्वः, ओम्, ये सब नाम वाला है॥ अग्रिम मन्त्रों के शब्द भी ईश्वर बोधक स्पष्ट हैं। कई २ वार इन शब्दों का अर्थ आगया है।

(सावित्रीम्, प्रविशामि) ईश्वर की ज्योति में मैं प्रविष्ट होता हूं- शेष शब्दों का अर्थ पूर्व गायत्रीमन्त्रार्थ में आचुका।

इति संन्यास प्रकरणम्॥

संन्याससंस्कार—

आजकल युरुप आदि देशों में भौतिक पदार्थों के गुण कर्म स्वभाव जानने और जानकर उन से उपयोग लेने में वहां के मेधावी पण्डित रात दिन निमग्न हैं। विद्युत रेडियम, (वर्चः) एक्सरेज़ (दिव्यरश्मि) आदि दिव्य भौतिक ज्योति के नाना रूप में वह दर्शन करते हुए उनसे काम लेरहे हैं। विमानयान की सिद्धि के लिये पूर्णरूप से पुरुषार्थ किया जारहा है और जिस दिन यह सिद्धि प्राप्त हुई, उस दिन से भावी सभ्यता का रूप बदलेगा। कुछ अधिक सुख की आशा भावी सभ्यता में होगी ऐसा वहाँ के पण्डितों का कथन है।

यत्न करते २ कौन जाने कि कब इन पश्चिमी पण्डितों को—

ब्रह्मतत्व

के दर्शन हों और जिस समय दर्शन हुए उस समय यह पुराने ऋषियों के समान कह उठेगें कि यह एक सर्व व्यापक, अतीव सूक्ष्म सत्ता सर्व भौतिक और चेतन तत्वों से दो मुख्यकारणों से विचित्र है। प्रथम यह कि सब भौतिक तत्वों समान सत्ता रखने से तत्व कहलासकती है। फिर यह कि जीव से भी अधिक चैतन्य वा ज्ञान वाली शक्ति है और सृष्टि में नियमपूर्वक रचना (डिजायन)-इसी के ज्ञान गुण का आविष्कार कर रही है। इसके अतिरिक्त समता वा आनन्द वा हार्मनि इसी शक्ति के कारण रचना में अनभव होरही है। पुराने ऋषियों ने इस महती शक्ति

का पूर्ण रूप से दर्शन तथा उपयोग किया था जिस दर्शन और उपयोग को वह " ब्रह्मोपासना " कहते थे। इस समय जिस प्रकार " विद्युत उपासना " " वाष्प उपासना " पश्चिमी विद्वान् कर रहे हैं और प्रत्येक के उपासकों के पृथक् २ स्थान पृथक् २ प्रबन्ध हैं और सबका खर्च जन मण्डल वा जन समाज पर है। उसी प्रकार पुराने समय में सबसे अतीव उपकारक—

ब्रह्मोपासना

के करने वाले संन्यासी कहलाते थे और ब्रह्मतत्वके ज्ञान द्वारा दर्शन तथा अनुभव करने से वह उस ब्रह्म के गुण कर्म स्वभाव की चर्चा समाचार पत्रों वा पुस्तकों द्वारा करते हुए सब से अधिक इस ब्रह्मतत्व का प्रभाव अपने जीवन में तजुरबा करके दिखाते और फिर वाणी से कहते थे- जन्म स्थिति और मृत्युका करने वाला यही ब्रह्म है, इसको उन्होंने निश्चय करलियाथा। सृष्टि (नेचर) का स्वामी यही एक ब्रह्म है, इसको वह निर्भ्रान्त रीति से जान चुके थे। इस सत् चित् आनन्द स्वरूप ब्रह्म के गुण कर्म स्वभावानुसार सत्यज्ञान और जिससे मनुष्य की एक जाति में आनन्द फैले वह आचरण रूपी साधन बतलाना उन संन्यासी महात्माओं का धर्म (ड्यूटी) था। " रेडियम " (वर्च) भक्तों वा उपासकों के समान ब्रह्मोपासकों ने ब्रह्मचिन्तन में निमग्न रहने से यह निश्चयात्मक रीतिसे जानलिया था कि एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य को उसके भौतिक धन, (शरीर, पृथ्वी, जल, अन्न, वस्त्र मकान आदि) और मानसिक धन (विद्या यश आदि) से हीन करना इस सर्वोपरि ब्रह्मशक्ति के प्रयोजन, तथा उसकी रचना के मर्म को न समझने के कारण होता है। वह बतलाते थे कि जब एक समर्थ ज्ञानी पिता अपनी सन्तान के लिये घर बनाता है तो यह हो नहीं सकता कि उसका एक लड़का उस घरके आनन्द को न भोगे। यदि वह मकान १० लड़के लड़कियों के ज्ञानी, धनी, और हितैषी पिता ने बनाया है तो १० ही उस में आनन्द कर सकते हैं। एक बड़ा लड़का जो पहिले उस गृह में प्रवेश करगया है यदि वह औरों के लिये भाग त्याग कर उस घर का भोग

न करें और ९ को ही उस गृह से निकालना चाहे वा दूसरों के स्वत्व पर अपना ही अधिकार जमाए तो इस के दो फल होंगे (१) तो यह कि ९ मिलकर वा पृथक् २ दुःख पावें ।

(२) ९ मिलकर वा पृथक् २ उस एक से लड़ें वा उसको भी सुख की नींद न सोने देवें ।

जब १० लड़कों में युद्ध मचरहा हो और कोई उनके पिता की मरजी जानने वाला उनको आकर यह युक्ति बतावे कि तुम १० ही सुख पूर्वक इस गृह में रहसकते हो, केवल इतना करो कि जितना तुम में से प्रत्येक को वास्तव में चाहिये उतना भाग लेलो शेष औरों के लिये छोड़दो अर्थात (१) तुम अपने भोग में आसक्ति न चाहो और (२) दूसरों के भोग वा स्वत्व छीनने तो दूर रहे उनके लेने की इच्छा तक मत करो तब तुम सब मिलकर सुखपूर्वक इस गृह के आनन्द को लेसकते हो अन्यथा नहीं ।

पुराने संन्यासी 'ब्रह्मोपासना से क्या महान् लाभ होता है' इस को वह इस मंत्र द्वारा चिन्तन किया करते वा कहते थे "ईशावास्यमिदं..........इत्यादि" आज कल युरुप में धन धान्य की कमी नहीं । पर प्रश्न यह है कि क्या युरुप के सब लोग इन्द्र कुबेर बन गये ! वा अधिक संख्या दुःखियों और निर्धनों की है ? इनका उत्तर कौंट-टाल स्टाय, हेनरी ज्यार्ज, कारलायल, जनरल बूथ आदि अनेक माने हुए विद्वान् मुक्तकंठ से कह रहे हैं कि जहां थोड़े इन्द्र और कुवेर बन रहे हैं वहाँ अधिक प्रजा उन भोगों से वञ्चित हैं । सूत्ररूप से यह कहा जासकता है कि सुखी थोड़े और दुखी बहुत हैं ।

अधिक मोटरकार और दिव्ययान बढ़ने वा अधिक बिमान उठाने से प्रजा का अधिक दुख दूर हो सकेगा ? नहीं, त्रिकाल में नहीं । यह दुःख एक मनुष्य दूसरे को दे रहा है भौतिक पदार्थों की वृद्धि इस दुःख को कम नहीं कर सकती । ज़रूरत है कि वहाँ" ब्रह्मोपासकों का एक महकमा

खोला जावे जो अपने प्राण हथेली पर रखे हुए लोगों को सत्य २ यह बतावें (१) कि तुम अपने निर्वाह के साधनों में आसक्त होते चले जारहे हो। इस भोगासक्ति-एशोआराम को छोड़ो–तपस्वी बनो। ग्राम के लोग विलासी नहीं हैं क्या वह शारीरिक बल में तुमसे न्यून हैं। इस लिये इन "भोगों को त्याग कर भोग अर्थात् अपने भोगो में आसक्त न होओ"

(२) जब तुम आसक्ति-ऐश के भाव को छोड़ दोगे तो फिर तुमको औरों के स्वत्व छीनने की अभिलाषा उत्पन्न न होगी और यदि कुसंस्कार से हो तो समझो कि सर्व जगत्के पिता ने यह भोग केवल तुम्हारे ही लिये नहीं बनाये हैं किन्तु सब के लिये बनाये हैं क्योंकि वह सबका ईश्वर (स्वामी) है इस लिये डांका, चोरी, हिंसा, लड़ाई आदि द्वारा कभी पर-धन पर-यश लेने का संकल्प मत करो। यदि करोगे तो तुम नेचर ही नहीं किन्तु नेचर के अधिपति की मनशा के विपरीत चलने से परस्पर दुःख पाओगे और शान्ति तुम से कोसों दूर भागेगी।

युरुप में भौतिक पदार्थों के तो संस्कार बहुत किये जारहे हैं पर मनुष्य के मन का संस्कार उक्त प्रकार से करने की ज़रूरत है ताकि मनुष्य, पशुपन को प्राप्त न हो।

वे ब्रह्मोपासक, जो इस शान्ति का मङ्गलपाठ देवें किस योग्यता के होने चाहियें ?

इस प्रश्नका उत्तर पुराने ऋषियोंने दिया है। वह "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" इस तत्व को समझ कर कहते थे कि सृष्टि में सर्वथा और सदैव मनुष्य समाज के मुखिया, नेता वा 'लीडर' ब्राह्मण अर्थात् विद्वान् ही होते हैं। आज युरुप भी मुक्तकंठ से मान रहा है कि प्रत्येक देश वा जन मण्डल का "स्वाभाविक लीडर" विद्वानों का मण्डल ही है, इस से अधिक युरुप नहीं बढ़ा।

पुराने आर्यों ने ब्राह्मण तथा क्षत्री और वैश्य विद्वानों को भी

अन्तिम लीडर मण्डली का सभासद् बनाने के लिये बड़ी कठिन परीक्षा वानप्रस्थ की रक्खी थी और जब इस परीक्षा से पास हो गये तो और तीन नई परीक्षा पास करने पर उन को भी लीडर मण्डल का सभासद् बनाया जाता था। वह ३ परीक्षाएँ ये थीं कि :—

१ उसने पुत्रैषणा त्याग दी
२ उसने वित्तैषणा त्याग दी
३ उसने लोकैषणा त्याग दी

जिस प्रकार जो डाक्टरी नहीं पढ़ा वह डाक्टरों के मंडल का सभासद् नहीं बन सक्ता, उसी प्रकार जो इन तीन इच्छाओं को नहीं त्याग सकता वह समदर्शी, ब्रह्मोपासक संन्यास मंडल में पग न रक्खे और जिसने रक्खा है उस के लिये पक्षपात, पार्टीस्प्रिट और एक देशीय भाव कहां रहा! वह ब्रह्मोपासक सर्व मनुष्यों के कृत्रिम देश, संप्रदाय, और मंडली पार्टी के बन्धनों को तोड़ कर एक मात्र सत्य कह सक्ता है। उसके लिये प्राणी मात्र एक है क्योंकि वह ब्रह्मोपासना से समदर्शी हो गया है। हिन्दू, बौद्ध, जैन, पार्सी, अछूत हिन्दू, यहूदी ईसाई, और मुसलमान उसकी दृष्टि में कोई नहीं। सब मनुष्य हैं और सब को सत्य और कल्याण मार्ग का उपदेश देना उसका धर्म है। पुराने समय में जब भारत में यह प्रथा तपस्वी ब्रह्मोपासक संन्यासी बनाने की थी तो वह जनमण्डल नहीं २ मनुष्य जाति के सच्चे परम नेता [लीडर] हुआ करते थे। उन की विद्या जो स्वर्ण की नाईं थी वह उनकी तपस्या के कारण कुन्दनवत् हो जाती थी। वही समय था जब एक संन्यासी दंडी महात्मा ने शकेन्द्र [सिकन्दर] से चक्रवर्ती राजा को [अपने प्राणों को जोखम में डालते हुए] निर्भयता से वह सत्य उपदेश किया था कि जिसका प्रभाव उसके हृदय पर भारी पड़ा और तृष्णा के लिये युद्ध से रुक गया।

क्या उक्त दंडी संन्यासी से सच्चे त्यागी और सत्यवक्ता उपदेशकों वा सच्चे अनेक लीडरों की पृथ्वी को अब जरूरत नहीं ? यदि है तो वानप्रस्थ और संन्यास की प्रथा को सर्वत्र जारी करने का यत्न करना चाहिये ताकि यह पृथ्वी अधिक शान्तिधाम * बनसके।

जब तक इस भारत देश में निष्पक्ष सच्चे संन्यासी विद्यमान रहे तब तक यह देश उन्नति करता रहा। उस उन्नति के समय के कई दृष्टान्त दिये जा सकते हैं जिन में सबसे प्रबल यह है (१) ४ वर्ण, चार पदवियाँ मानी जाती थीं और गुण कर्म से जो जिसका अधिकारी होता था उसको दी जाती थीं। मातंग, जनश्रुति, वसिष्ठ, वाल्मीकि आदि नीच कुल में उत्पन्न, ब्राह्मण वर्ण को पागये और फिर ऋषि तक बने। स्त्रियाँ उस समय गार्गी समान उच्च से उच्च विद्या तथा देवी की पदवी को धारण करती थीं। मनुष्य मात्र एक जाति समझी जाती थी।

[२] मेगेस्थनीज़ ने जो आर्य सभ्यता का वर्णन किया है, उससे पाया जाता है कि आर्य प्रजा, झूंट नहीं बोलती थी, मकानों को ताले नहीं लगाये जाते थे। चोरी नहीं होती थी, लड़कर राज द्वार में नहीं जाते थे। यह यदि प्रताप था तो उन संन्यासी वानप्रस्थ महात्माओं के सत्य उपदेशों और उनसे सहस्रांश बढ़ कर उन के जीवन, जागृति, धार्मिकजीवन का था।

(३) निष्कामकर्म की सिद्धि के लिये दो अन्त के आश्रम थे। जिनमें होकर उस समय वृद्ध संन्यासी, जनमंडल का कल्याण करते थे आज युरुप में बड़े आदमी का यह लक्षण है कि उसको बहुत आदमी जानते हों और कीर्ति ही वहाँ मुख्य कर के समझी जारही है जिसका संपादन लोगों को वहाँ व्यसन होगया है पुराने समय में गृहस्थ के पश्चात् यश के लिये चेष्टा करना ही वानप्रस्थ को गिराता था निष्काम

---

* वानप्रस्थ और संन्यासी ही "दुःख का मूल कारण अविद्या है" ऐसा निश्चय कर उसके ४ प्रकार के स्वरूप को जो अनित्य को नित्य इत्यादि मानना है दूर कर के शान्ति फैलासकते हैं।

परोपकार जिस प्रकार ईश्वर कर रहे हैं इसी प्रकार करना पुराने वानप्रस्थ और संन्यासी का धर्म था।

उस समय विद्या बुद्धि का प्रचार सहज में अति उत्तम रीति से इस लिये होसकता था कि आचार्य से महान् विद्वान् वानप्रस्थी, भिक्षाके अन्न पर मिल सकते थे। गुरुकुलों तथा सर्व अन्य भागों के धार्मिक तथा पक्षपात रहित निरीक्षण के लिये इन्सपेक्टरों तथा डायरैक्टरों का काम पूर्ण त्यागी और धार्मिक संन्यासी भिक्षा पाकर किया करते थे।

यदि महाराज अश्वपति को यह कहने का साहस हुआ था कि उसके राज्य में चोर, कंजूस, शराबी, अग्निहोत्र से रहित, अविद्वान्, व्यभिचारी और व्यभिचारिणी कोई नहीं तो उसका एक मात्र कारण पुराने आर्यों की वर्णाश्रम मर्यादा थी जो अब लुप्त होगई है और जिस का उद्धार संन्यासी ही अपने उपदेशों से अब कर सकते हैं। महर्षि कपिलका कथन सत्य है कि जब २ उत्तम उपदेश होते हैं तब २ प्रकाश की परम्परा चलती है। वह उत्तम उपदेशक वयो वृद्ध, अनुभव वृद्ध, शान्तस्वभाव, निष्काम कर्म करने वाले पक्षपात रहित, सर्व हित साधक एक मात्र संन्यासी ही होसकते हैं। इसलिये संसार की शान्ति तथा उन्नति के लिये इस संस्कार के पुनः प्रचार करने की भारी जरूरत है।

"संस्कार विधि*" पृ० २३६ पर लिखा है कि "संन्यास संस्कार उसको कहते हैं कि जो मोहादि आवरण, पक्षपात छोड़ के विरक्त होकर सब पृथ्वी में परोपकारार्थ विचरे,,

सच्चे संन्यासी दयानन्द जी के अन्तः करण से निकले हुए यह शब्द, अहो! कितने सारगर्भित और भाव पूर्ण हैं! कई लोग प्रश्न किया करते है कि संन्यासी तो संसार छोड़ बैठा, वह काहे को किसी से बात व उपदेश करता होगा। इस के उत्तर में हम कहेंगे कि "संस्कार विधि,, पृष्ठ २४३ पर जो मनुस्मृति का श्लोक दिया है उसका अर्थ यह है कि—

* यह पृष्ठ संख्या "वैदिक प्रेस अजमेर" की मुद्रित मूल "संस्कार विधि" की सर्वत्र समझनी चाहिये॥

"चलते समय आगे २ देख के पग धरे, सदा वस्त्र से छानकर जल पीवे, सबसे सत्य वाणी बोले, अर्थात् सत्योपदेश ही किया करे और जो कुछ व्यवहार करे वह मन की पवित्रता से करे।"

ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य संन्यास के अधिकारी हैं। यह मनुजी के लेखानुसार "संस्कार विधि" में लिखागया है [पृष्ठ २४६]

पृष्ठ २५७ पर लिखा है कि संन्यास लेनेवाला पांच या छः शिरके बालों को छोड़ कर डाढ़ी मूंछ आदि मुंडन करावें। और स्नान करके अपने शिरपर पुरुष सूक्त के मन्त्रों से १०८ वार अभिषेक करे।

पुरुष सूक्त के एक वार वा कुछ अधिक पाठ से १०८ बार शिरपर छींटें दिये जासकते हैं। इस क्रिया का भाव यह प्रतीत होता है कि उसने परिव्राट् बनना है जिसके लिये [श्री १०८] लोग आदरार्थ लिखते हैं। जितना ऊंचा पद उसने धारण करना है उतने ही उसके विचार जल समान शान्त होने चाहियें। यह तो जल के छींटों का भाव समझिये। पुरुष सूक्त के मंत्र इसलिये उस समय बोले जाते हैं कि जहाँ वह मनको शान्त रक्खें वहाँ साथ ही परोपकार वृत्ति को एकदेश की सीमा से बाहर लेजावे क्योंकि पुरुष सूक्त ईश्वर को देशविशेष वा प्राणीविशेष से संबन्ध रखने हारा नहीं बताता। प्रत्युत बतलाता है कि ईश्वर विश्व वा ब्रहमाण्ड का रचक है और सर्व प्राणी मात्र का उत्पादक है। इससे वह व्यापक और सर्व देशीय भावों को दिमाग़ में धारण करेगा, उसके लिये १०८ बार कड़ी प्रतिज्ञा मानो कर रहा है। दीक्षा के समय बौद्ध तथा ईसाई लोग सिरपर इसी भाव से जल छींटा करते हैं। संन्यासी प्रतिज्ञा कर रहा है कि उसने—

[१] पुत्रैषणा [२] वित्तैषणा [३] लोकैषणा का त्याग करदिया।

पृष्ठ २५३ पर विधान है कि मौन होकर वह पांच सात बाल जो शिखा के रक्खे थे वह भी काट डाले। और यज्ञोपवीत हाथ में लेकर जलकी अञ्जलि भर शिखा और यज्ञोपवीत सहित जल में डाल देवे।

इसका प्रयोजन यह है कि शिखा और सूत्र का जो उद्देश्य था वह तीन आश्रमों में पूर्ण होचुका। अब वह किसी देशविशेष की उपजाति से

संबन्ध नहीं रखता है और न उसने ज्ञान, कर्म, उपासना के लिये कर्म करने हैं वह तो अब ब्रह्मज्ञान को प्राप्त होने वाला है। जो बाह्य साधनों से नहीं मिलता इस लिये उन बाह्य चिन्हों की जरूरत नहीं। और जो पृष्ठ २५२ पर नाभि मात्र जल में खड़े रहकर मन्त्र जपनेका विधान है उसका प्रयोजन यह है कि संसार का मोह जल की नाईं डुबाने वाला है तथा विषयभोग की प्रबल इन्द्रियाँ अब शान्त हों। जल से, बाहर निकलने पर वह "संन्यस्तं मया" इत्यादि वाक्यों से दर्शा रहा है कि मैंने "सब कुछ छोड़ दिया" अर्थात् मोह सागर को जो आत्मज्ञान को डुबाने वाला था छोड़ दिया है। प्रश्न होसकता है कि नाभि तक ही जल में खड़ा क्यों रहे! छाती तक क्यों न रहे? इसका उत्तर यह है कि विषय भोग की प्रबल इन्द्रियाँ नाभि से नीचे हैं, यह भी दर्शाना है कि विषय वासना अब शान्त हुई "संन्यस्तं मया" कहते हुए जो जलाञ्जली छोड़ी जाती है, यह दृढ़ त्याग के भाव को प्रकट करती है। क्योंकि जो वह मुख से कह रहा है उसी को संकेत द्वारा दर्शा रहा है। जब अञ्जली में जल लेकर फैंकदें तो फिर उसी जल को मुट्ठी में कभी हम इकठा नहीं कर सकते, इसलिये दृढ़ त्याग की प्रतिज्ञा के भाव को प्रकट करने के लिये ऐसा किया जाता है।

नीतिकारों ने सच कहा है कि राजा तो अपने ही देश में पूजा को प्राप्त होता है परन्तु विद्वान् संन्यासी सर्वत्र। उस का कारण यह है कि राजा धनी तो अपनी प्रजा की ही रक्षा करने को है और संन्यासी का धर्म एक मात्र मनुष्य जाति में सत्य ज्ञान और प्रेम (आनन्द) बढ़ाने का है इस समय " यूनिवरसल ब्रदरहुड " (सर्वजनीन भ्रातृभाव) फैलाने की कितनी आवश्यकता समझी जाती है, परन्तु यही काम संन्यासी का है। आज तपोहीन, मान के व्यसनी लोग इस भाव को पूर्ण रूप से नहीं फैला सकते। पुराने समय में सच्चे संन्यासी इसको कर पाते थे और उसके साथ युक्ति पूर्ण सत्यज्ञान भी फैलाते थे॥

संन्यासी को जो कुसुंबी वा गेरुवे वस्त्र धारण करने का विधान है, उस वेष का एक लाभ तो यह है कि सब उनको जान सकें। इस के अतिरिक्त गेरुवे रँग में लोहू को शान्त करने और खुजली आदि दूर करने की शक्ति है। इस विषय में आयुर्वेद का मत यह है कि:—

सुवर्णं गैरिकं स्निग्धम् मधुरम् तुवरं मतम् ।
चक्षुष्यं शीतलं वल्यं व्रणरोपणकारणम् ।
विशदं कान्तिकृत्प्रोक्तं दाहं पित्तं कफं जयेत् ।
हिक्कां रक्तरुजं जूर्तिंविषं विस्फोटकं वमिम् ।
अग्निदग्धव्रणं चार्शं रक्तपित्तं च नाशयेत् ।

[शालिग्राम निघण्टु भूषण पृष्ठ ७३१]

अर्थ—पीला गेरू-स्निग्ध, मधुर, कषेला, नेत्रों को हितकारी, शीतल, बलकारक, व्रणरोपण कर्ता, विशद, कान्तिजनक तथा दाह, पित्त, कफ, रुधिर विकार, ज्वर, विष, विस्फोटक, वमन, अग्निदाह, व्रण, बवासीर और रक्तपित्त को हरने वाला है।

गेरू की दो जातियाँ हैं पीली और लाल इन में से पीले गेरू के गुण ऊपर दिये जा चुके हैं आगे लाल गेरू के गुण भी लिखे जाते हैं।

गैरिकं द्वितीयं स्निग्धं मधुरं तुवरं मतम् ।
चक्षुष्यं दाहपित्तासृक्कफहिक्काविषापहम् ।

शालिग्राम निघंटु भूषण पृष्ठ ७३२

अर्थ—दूसरे प्रकार का गेरू-स्निग्ध, मधुर, कषेला, नेत्रों को हितकारी तथा दाह, रक्त पित्त, कफ, हिचकी और विष का हरने वाला है॥

कुसुम्ब के गुण भावप्रकाश में लिखे हैं कि:—

कुसुम्भं बातलं कृच्छ्रकृमिपित्तकफापहम् ॥

अर्थ—कसूम, बातकर्ता तथा मूत्रकृच्छ्र रक्तपित्त और कफनाशक है।

उक्त दोनों वस्तुओं के आयुर्वेदानुसार गुण ऊपर बताये गये हैं जिससे स्पष्ट है कि दोनों ही वस्तुओं का उपयोग, रक्तशोधक, नेत्र की दृष्टि को बलदाता तथा स्थिर कर्ता, कफ के विकारों को दूर कर्ता तथा विशद होने से खुश्की को दूर करके त्वचा को फटने से बचाने वाला है और प्रायः यह सब ही उपद्रव वृद्धावस्था में होते हैं। अतः गेरू और कुसुम्भ के उपयोग भी विज्ञान की युक्तियों के अनुसार ही हैं।

इति संन्यास प्रकरण व्याख्या ॥



अथान्त्येष्टिसंस्कारविधिः ॥

अन्त्येष्टि संस्कार उस को कहते हैं कि जो शरीर के अन्त का संस्कार है जिस के आगे उस शरीर के लिये कोई भी अन्य संस्कार नहीं है इसी को नरमेध, पुरुषमेध, नरयाग, पुरुषयाग भी कहते हैं ॥

भस्मान्त ँ शरीरम् ॥ यजु० अ० ४० मं० १५ ॥

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः ॥ मनु० ॥

इस शरीर का संस्कार " भस्मान्तम् " अर्थात् भस्म करने पर्यन्त है ॥१॥ शरीर का आरम्भ ऋतुदान से और अन्त में श्मशान अर्थात् मृतक कर्म है ॥ २ ॥ (प्रश्न) जो गरुड़ पुराण आदि में दशगात्र एकादशाह द्वादशाह सपिण्डीकर्म मासिक, वार्षिक, गया श्राद्ध आदि क्रिया लिखी हैं क्या ये सब असत्य हैं (उत्तर) हाँ अवश्य मिथ्या हैं क्योंकि वेदों में इन कर्मों का विधान नहीं है इसलिये अकर्त्तव्य हैं और मृतक जीव का सम्बन्ध पूर्व सम्बन्धियों के साथ कुछ भी नहीं रहता और न इन जीते हुए सम्बन्धियों का, वह जीव अपने कर्म के अनुसार जन्म पाता है (प्रश्न) मरने के पीछे जीव कहाँ जाता है (उत्तर) यमालय को (प्रश्न) यमालय किस को कहते हैं (उत्तर) वाय्वालय को (प्रश्न) वाय्वालय किस को कहते हैं (उत्तर) अन्तरिक्ष को, जो कि यह पोल है (प्रश्न) क्या गरुड़पुराण आदि में जो यमलोक लिखा है वह झूठा है ? (उत्तर) अवश्य मिथ्या है (प्रश्न) पुनः संसार क्यों मानता है (उत्तर) वेद के अज्ञान और उपदेश के न होने से; जो यम की कथा लिख रक्खी है वह भी सब मिथ्या है क्योंकि यम इतने पदार्थों के नाम हैं ॥

षडिद्यमा ऋषयो देवजा इति ॥ ऋ० मं० १ सू०१६४ मं० १५ ॥

शकेम वाजिनो यमम् । ऋ० मं० २ सू० ५ मं० १ ॥

यमाय जुहुता हविः । यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥ ऋ० मं० १० सू०१४ मं० १३ ॥

यमः सूयमानो विष्णुः सम्भ्रियमाणो वायुः पूयमानः ॥ यजु० अ० ८ । मं० ५७ ॥

वाजिनं यमम् ॥ ऋ० मं० ८ सू० २४ मं० २२ ॥

यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ ऋ० मं० १ सू० १६ मं० ४६ ॥

यहाँ ऋतुओं का यम नाम है ॥ १ ॥ यहाँ परमेश्वर का नाम ॥ २ ॥ यहाँ अग्नि का नाम ॥ ३ ॥ यहाँ वायु, विद्युत, सूर्य के यम नाम हैं ॥ ४ ॥ यहाँ भी वेग वाला होने से वायु का नाम यम है ॥ ५ ॥ यहाँ परमेश्वर का नाम यम है। इत्यादि पदार्थों का नाम यम है इस लिये पुराण आदि की सब कल्पनाएँ झूठी हैं ॥ ६ ॥

विधिः-- संस्थिते भूमिभागं खानयेद्दक्षिणपूर्वस्यां दिशि दक्षिणापरस्यां वा ॥ १ ॥ दक्षिणाप्रवणं प्राग्दक्षिणाप्रवणं वा प्रत्यग्दक्षिणाप्रवणमित्येके ॥ २ ॥ यावानुद्बाहुकः पुरुषस्तावदायामम् ॥ ३ ॥ वितस्त्यवाक् ॥ ४ ॥ केशश्मश्रुलोमनखानीत्युक्तं पुरस्तात् ॥ ५ ॥ द्विगुल्फं बर्हिराज्यं च ॥ ६ ॥ दधन्यत्र सर्पिरानयन्त्येतत् पित्र्यं पृषदाज्यम् ॥ ७ ॥ आश्व० गृ० सू० अ० ४ क० १ । अथैतां दिशमाग्नीन्नयन्ति यज्ञपात्राणि च ॥ ८ ॥ आश्व० गृ० सू० अ० ४ क० २ सू० १ ॥

जब कोई मर जावे तब यदि पुरुष हो तो पुरुष और स्त्री हो तो स्त्रियाँ उसको स्नान करावें चन्दनादि सुगन्धलेपन और नवीनवस्त्र धारण करावें जितना उसके शरीर का भार हो उतना घृत, यदि अधिक सामर्थ्य हो तो अधिक लेवें और जो महादरिद्र भिक्षुक हो कि जिस के पास कुछ भी न हो तो उसको कोई श्रीमान् वा पंच बन के आध मन से कम घी न देवे और श्रीमान् लोग शरीर के बराबर तोल के चन्दन, सेर भर घी में एक रत्ती कस्तूरी, एक मासा केसर, एक २ मण घी के साथ सेर २ भर अगर तगर और घृत में चन्दन का चूरा, कपूर भी यथाशक्ति डाल पलाश आदि के

पूर्ण काष्ठ, शरीर के भार से दूनी सामग्री श्मशान में पहुंचावें। तत्पश्चात मृतक को वहाँ श्मशान में ले जाय यदि प्राचीन वेदी बनी हुई न हो तो नवीन वेदी भूमि में खोदे वह श्मशान का स्थान बस्ती से दक्षिण तथा आग्नेय अथवा नैर्ऋत्य कोण में हो वहाँ भूमि को खोदे मृतक के पग दक्षिण नैर्ऋत्य अथवा आग्नेय कोण में रहें, शिर उत्तर ईशान वा वायव्य कोण में रहे ॥१॥ मृतक के पग की ओर वेदी के तले में नीचा और शिर की ओर थोड़ा ऊँचा रहे ॥२॥ उस वेदी का परिमाण-पुरुष खड़ा होकर ऊपर को हाथ उठावे उतनी लम्बी और दोनों हाथों को लम्बे उत्तर दक्षिण पार्श्व में करने से जितना परिमाण हो अर्थात् मृतक के साढ़े तीन हाथ अथवा तीन हाथ से ऊपर चौड़ी होवे और छाती के बराबर गहरी होवे ॥३॥ और नीचे आध हाथ अर्थात् एक बीता भर रहे उस वेदी में थोड़ा २ जल छिड़कावे यदि गोमय उपस्थित हो तो लेपन भी करदे उसमें नीचे से आधी वेदी तक लकड़ियाँ चिने जैसे कि भित्ती में ईंटें चिनी जाती हैं अर्थात् बराबर जमा कर लकड़ियाँ धरे लकड़ियों के बीच में थोड़ा २ कपूर थोड़ी २ दूर पर पर रक्खे उसके ऊपर मध्य में मृतक को रक्खे अर्थात् चारों ओर वेदी बराबर खाली रहे और पश्चात् चारों ओर और ऊपर चन्दन तथा पलाश आदि के काष्ठ बराबर चिने वेदी से ऊपर एक बीता भर लकड़ियाँ चिने जब तक यह क्रिया होवे तब तक अलग चूल्हा बना, अग्नि जला, घृत तपा और छानकर पात्रों में रक्खे उस में कस्तूरी आदि सब पदार्थ मिलावे लम्बी २ लकड़ियों में चार चमसों को चाहे वे लकड़ी के हों वा चाँदी सोने के अथवा लोहे के हों जिन चमसों में एक छटाँक भर से अधिक और आधी छटाँक से न्यून घृत न आवे उन्हें खूब दृढ़ बन्धनों से डण्डों के साथ बाँधे पश्चात् घृत का दीपक कर के कपूर में लगाकर शिर से आरम्भ कर पादपर्यन्त मध्य २ में अग्निप्रवेश करावे, अग्निप्रवेश करा के:—

ओमग्नये (१) स्वाहा । ओं सोमाय स्वाहा । ओं लोकाय

---

(१) इन शब्दों का अर्थ सरल है और पूर्व कर भी आए ॥

स्वाहा । ओमनुमतये स्वाहा । ओं स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ॥ आश्व० गृ० सू० अ० ४ क० ३ सू० २५ ।

इन पांच मन्त्रों से आहुतियाँ देके अग्नि को प्रदीप्त होने देवे तत्पश्चात् चार मनुष्य पृथक् २ खड़े रह कर वेदों के मन्त्रों से आहुति देते जायँ । जहाँ "स्वाहा" आवे वहाँ आहुति छोड़ देवें ॥

अथ वेदमन्त्राः॥

सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा। अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः स्वाहा ॥ १ ॥ अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः । यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकं स्वाहा ॥२॥ अवसृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः । आयुर्वसान उपवेतु शेषः संगच्छतां तन्वा जातवेदः स्वाहा ॥३॥ अग्नेर्वर्म परिगोभिर्व्ययस्व सम्प्रोर्णुष्व पीवसा मेदसा च। नेत्त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग्विधक्ष्यन्पर्यङ्खयाते स्वाहा ॥४॥ यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः । कियाम्ब्वत्र रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा स्वाहा ॥ ५ ॥ ऋ० मं० १० सू० १६ मं० ३ । ४ । ५ । ७ । १३ ॥

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् । वैवस्वतं सङ्गमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य स्वाहा ॥ ६ ॥ यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ॥ यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या ३ अनुस्वाः स्वाहा ॥७॥ मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः । यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहाऽन्ये स्वधयान्ये मदन्ति स्वाहा ॥ ८ ॥ इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः

संविदानः । आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन्हविषा मादयस्व स्वाहा ॥९॥ अङ्गिरोभिरागहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व । विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन्यज्ञे वर्हिष्यानिषद्य स्वाहा ॥१०॥ प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः । उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवं स्वाहा ॥११॥ संगच्छस्व पितृभिः संयमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् । हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि संगच्छस्व तन्वा सुवर्चाः स्वाहा ॥१२॥ अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् । अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै स्वाहा ॥१३॥ यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः । यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरङ्कृतः स्वाहा ॥१४॥ यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत । स नो देवेष्वायमद्दीर्घमायुः प्रजीवसे स्वाहा ॥१५॥ यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन । इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः स्वाहा ॥१६॥ ऋ० मं० १० सू० १४ ॥ कृष्णः श्वेतोऽरुषो यामो अस्य ब्रध्न ऋज्र उत शोणो यशस्वान् । हिरण्यरूपं जनिता जजान स्वाहा ॥१७॥ ऋ० मं० १० सू० २० मं० ९ ॥

इन ऋग्वेद के मन्त्रों से चारों जने १७ सत्रह २ आज्याहुति देकर निम्नलिखित मन्त्रों से उसी प्रकार आहुति देवें ॥

प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः स्वाहा ॥१॥ पृथिव्यै स्वाहा ॥२॥ अग्नये स्वाहा ॥३॥ अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥४॥ वायवे स्वाहा ॥५॥ दिवे स्वाहा ॥६॥ सूर्याय स्वाहा ॥७॥ दिग्भ्यः स्वाहा ॥८॥ चन्द्राय स्वाहा ॥९॥ नक्षत्रेभ्यः स्वाहा ॥१०॥ अद्भ्यः स्वाहा ॥११॥ वरुणाय स्वाहा ॥१२॥ नाभ्यै

स्वाहा ॥१३॥ पूताय स्वाहा ॥ १४ ॥ वाचे स्वाहा ॥ १५ ॥ प्राणाय स्वाहा ॥१६॥ प्राणाय स्वाहा ॥ १७ ॥ चक्षुषे स्वाहा ॥१८॥ चक्षुषे स्वाहा ॥ १९ ॥ श्रोत्राय स्वाहा ॥ २० ॥ श्रोत्राय स्वाहा ॥ २१ ॥ लोमभ्यः स्वाहा ॥ २२ ॥ लोमभ्यः स्वाहा ॥ २३ ॥ त्वचे स्वाहा ॥ २४ ॥ त्वचे स्वाहा ॥ २५ ॥ लोहिताय स्वाहा ॥ २६ ॥ लोहिताय स्वाहा ॥ २७ ॥ मेदोभ्यः स्वाहा ॥ २८ ॥ मेदोभ्यः स्वाहा ॥ २९ ॥ माꣳसेभ्यः स्वाहा ॥ ३० ॥ माꣳसेभ्यः स्वाहा ॥ ३१ ॥ स्नावभ्यः स्वाहा ॥ ३२ ॥ स्नावभ्यः स्वाहा ॥ ३३ ॥ अस्थ-भ्यः स्वाहा ॥ ३४ ॥ अस्थभ्यः स्वाहा ॥ ३५ ॥ मज्जभ्यः स्वाहा ॥ ३६ ॥ मज्जभ्यः स्वाहा ॥ ३७ ॥ रेतसे स्वाहा ॥ ३८ ॥ पायवे स्वाहा ॥ ३९ ॥ आयासाय स्वाहा ॥ ४० ॥ प्रयासाय स्वाहा ॥ ४१ ॥ संयासाय स्वाहा ॥ ४२ ॥ वियासाय स्वाहा ॥ ४३ ॥ उद्यासाय स्वाहा ॥ ४४ ॥ शुचे स्वाहा ॥ ४५ ॥ शोचते स्वाहा ॥ ४६ ॥ शोचमानाय स्वाहा ॥ ४७ शोकाय स्वाहा ॥ ४८ ॥ तपसे स्वाहा ॥ ४९ ॥ तप्यते स्वाहा ॥ ५० ॥ तप्यमानाय स्वाहा ॥ ५१ ॥ तप्ताय स्वाहा ॥ ५२ ॥ घर्माय स्वाहा ॥ ५३ ॥ निष्कृत्यै स्वाहा ॥ ५४ ॥ प्रायश्चित्त्यै स्वाहा ॥ ५५ ॥ भेषजाय स्वाहा ॥ ५६ ॥ यमाय स्वाहा ॥ ५७ ॥ अन्तकाय स्वाहा ॥ ५८ ॥ मृत्यवे स्वाहा ॥ ५९ ॥ ब्रह्मणे स्वाहा ॥ ६० ॥ ब्रह्महत्यायै स्वाहा ॥ ६१ ॥ विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ ६२ ॥ द्यावापृथिवीभ्याꣳ स्वाहा ॥ ६३ ॥ यजु० अ० ३९ ॥

इन ६३ तिरसठ मन्त्रों से तिरसठ आहुति पृथक् पृथक् देके निम्न लिखित मन्त्रों से आहुति देवें ॥

सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः । अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठा

शरीरैः स्वाहा ॥१॥ सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते । येभ्यो मधु प्रधावति ताँश्चिदेवापि गच्छतात् स्वाहा ॥२॥ ये चित्पूर्व ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः । ऋषींस्तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् स्वाहा ॥३॥ तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः । तपो ये चक्रिरे महस्ताँश्चिदेवापि गच्छतात् स्वाहा ॥४॥ ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः॥ ये वा सहस्रदक्षिणास्ताँश्चिदेवापि गच्छतात् स्वाहा ॥५॥ स्योनास्मै भव पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी यच्छास्मै शर्म सप्रथाः स्वाहा ॥६॥ अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्तन्निर्वहत परिग्रामादितः । मृत्युर्यमस्यासीद्दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयाञ्चकार स्वाहा ॥७॥ यमः परोवरो विवस्वांस्ततः परं नातिपश्यामि किञ्चन । यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो भुवो विवस्वानन्वाततान स्वाहा ॥८॥ अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सवर्णामदर्दुर्विवस्वते । उताश्विनावभरद्यत्तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः स्वाहा ॥९॥ इमौ युनज्मि ते वन्ही असुनीताय वोढवे । ताभ्यां यमस्य सादनं समितीश्चाव गच्छतात् स्वाहा ॥१०॥ अथर्व० कां० १८ । सू० २ ॥

इन दश मन्त्रों से दश आहुति देकरः—

अग्नये रयिमते स्वाहा ॥१॥ पुरुषस्य सयावर्यपेदघानि मृज्महे यथा नो अत्र नापरः पुरा जरस आयति स्वाहा ॥२॥ य एतस्य पथो गोप्तारस्तेभ्यः स्वाहा ॥३॥ य एतस्य पथो रक्षितारस्तेभ्यः स्वाहा ॥४॥ य एतस्य पथोऽभिरक्षितारस्तेभ्यः स्वाहा ॥५॥ ख्यात्रे स्वाहा ॥६॥ अपाख्यात्रे स्वाहा ॥७॥

अभिलालपते स्वाहा ॥ ८॥ अपलालपते स्वाहा ॥ ९॥ अग्नये कर्मकृते स्वाहा ॥ १० यमत्र नाधीमस्तस्मै स्वाहा ॥ ११ ॥ अग्नये वैश्वानराय सुवर्गाय लोकाय स्वाहा ॥ १२ ॥ आयातु देवः सुमनाभिरूतिभिर्यमो ह वेह प्रयताभिरक्ता । आसीदताꣳ सुप्रयते ह बर्हिष्यूर्जाय जात्यै मम शत्रुहत्यै स्वाहा ॥ १३ ॥ योऽस्य कौष्ठ्य जगतः पार्थिवस्यैक इद्वशी । यमं भङ्ग्यश्रवो गाय यो राजाऽनपरोध्यः स्वाहा ॥ १४ ॥ यमं गाय भङ्ग्य श्रवो यो राजाऽनपरोध्यः । येनाऽऽपो नद्यो धन्वानि येन द्यौः पृथिवी दृढा स्वाहा ॥ १५ ॥ हिरण्यकक्ष्यान्सुधुरान् हिरण्याक्षानयः शफान् । अश्वाननश्नतो दानं यमो राजाभितिष्ठति स्वाहा ॥ १६ ॥ यमो दाधार पृथिवीं यमो विश्वमिदं जगत् । यमाय सर्वमित्तस्थे यत् प्राणद्वायुरक्षितं स्वाहा ॥१७॥ यथा पञ्च यथा षड् यथा पञ्चदशर्षयः । यमं यो विद्यात् स ब्रूयाद्यथैकऋषिर्विजानते स्वाहा ॥ १८ ॥ त्रिकद्रुकेभिः पतति षडुर्वीरेकमिद्बृहत् । गायत्री त्रिष्टुप्छन्दाꣳसि सर्वा ता यम आहिताः स्वाहा ॥१९ ॥अहरहर्नयमानो गामश्वं पुरुषं जगत् । वैवस्वतो न तृप्यति पञ्चभिर्मानवैर्यमः स्वाहा ॥२०॥ वैवस्वते विविच्यन्ते यमे राजनि ते जनाः । ये चेह सत्ये नेच्छन्ते य उ चानृतवादिनः स्वाहा ॥ २१ ते राजन्निह विविच्यन्तेथा यान्ति त्वामुप । देवांश्च ये नमस्यन्ति ब्राह्मणाँश्चापचित्यति स्वाहा ॥ २२ ॥ यस्मिन्वृक्षे सुपलाशे देवैः संपिबते यमः । अत्रा नो विश्पतिः पिता पुराणा अनुवेनति स्वाहा ॥ २३ ॥ उत्ते तभ्नोमि पृथिवीं त्वत्परीमं लोकं निदधन्मो अहꣳरिषम् । एताꣳ स्थूणां पितरो धारयन्तु तेऽत्रायमः सादनात्ते मिनोतु स्वाहा ॥ २४ ॥ यथा ऽहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्त्तव ऋतुभिर्यन्ति क्लृप्ताः । यथा नः पूर्वमपरो जहात्येवा धात रायूꣳषि कल्पयैषां स्वाहा ॥ २५ ॥ न हि ते अग्ने तनुवै क्रूरं चकार मर्त्यः । कपिर्बभस्ति तेजनं पुनर्जरायुर्गौरिव । अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुध्या रयिम् । अप नः शोशुचदघं मृत्यवे स्वाहा ॥ २६ ॥ तैत्ति० प्रपा० ६ अनु० १—१० ॥

इन छब्बीस आहुतियों को करके ये सब (ओम् अग्नये स्वाहा) इस मन्त्र से लेके (मृत्यवे स्वाहा) तक, एक सौ इक्कीस आहुति हुईं अर्थात् ४ जनों की मिल के ४८४ चारसौ चौरासी और जो दो जने आहुति देवें तो २४२ दोसौ बयालीस; यदि घृत विशेष हो तो पुनः इन्हीं एक सौ इक्कीस मन्त्रों से आहुति देते जायँ यावत् शरीर भस्म न हो तावत् देवें पुनः सब जने वस्त्र व प्रक्षालन स्नान करके जिसके घर में मृत्यु हुआ हो उस के घर की मार्जनलेपन प्रक्षालनादि से शुद्धिकरके स्वस्तिवाचन शान्तिकरण का पाठ और ईश्वरोपासना करके इन्हीं स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण के मन्त्रों से जहाँ अङ्क अर्थात् मन्त्र पूरा हो वहाँ स्वाहा शब्द का उच्चारण कर के सुगन्ध्यादि मिले हुए घृत की आहुति घर में देवें कि जिस से मृतक का वायु घर से निकल जाय और शुद्ध वायु घर में प्रवेश करे और सब का चित्त प्रसन्नरहे यदि उस दिन रात्रि होजाय तो थोड़ी सी आहुति देकर दूसरे दिन प्रातःकाल उसी प्रकार स्वस्ति वाचन और शान्तिकरण के मन्त्रों से आहुतियाँ देवें तत्पश्चात् जब तीसरा दिन हो तब मृतक का कोई सम्बन्धी श्मशान में जाकर चिता से अस्थि उठा के उस श्मशानभूमि में कहीं पृथक् रख देवे, बस इस के आगे मृतक के लिये कुछ भी कर्म कर्तव्य नहीं है क्योंकि पूर्व (भस्मान्तꣳ-शरीरम्) यजुर्वेद के मन्त्र के प्रमाण से स्पष्ट हो चुका कि दाहकर्म और अस्थिसंचयन से पृथक् मृतक के लिये दूसरा कोई भी कर्म कर्तव्य नहीं है, हाँ यदि वह संपन्न हों तो अपने जीते जी वा मरेपीछे उनके सम्बन्धी वेदविद्या, वेदोक्तधर्म का प्रचार, अनाथपालन, वेदोक्तधर्मोपदेशक प्रभृति के लिये चाहे जितना धन प्रदान करें बहुत अच्छी बात है ॥

इत्यन्त्येष्टिसंस्कारविधिः ॥

इति श्री १०८ दयानन्द सरस्वती कृत मूल संस्कारविधिः ।

अन्त्येष्टिसंस्कार के संस्कृत भाग की क्रम से व्याख्या—

(संस्थिते) मरजाने पर (भूमिभागम्) पृथिवी के एक देशको (खानयेत्) खुदावे (दक्षिणपूर्वस्यां, दिशि) आग्नेयी दिशा में, (दक्षिणापरस्यां, वा) अथवा नैऋती दिशा में ॥ १ ॥ (दक्षिणाप्रवणम्) दक्षिण दिशा की तरफ जो गढ़ा खोदा जाय वह (प्रागुदक्षिणाप्रवणम्) दक्षिण दिशा के पूर्व की ओर झुका हुआ हो (वा) अथवा (प्रत्यग् दक्षिणाप्रवणम्, इति, एके) कोई आचार्य मानते हैं कि वह नैऋती दिशा की ओर हो ॥ २ ॥ (यावान्, उद्बाहुकः, पुरुषः) जितने परिमाण में ऊँचे को भुजा उठाने वाला मनुष्य होता है (तावद्, आयामम्) उतने परिमाण में वह गढ़ा लम्बा होना चाहिये ॥ ३ ॥ (वितस्त्यवाक्) १२ अङ्गुल नीचे खुदना चाहिए ॥ ४ ॥ (पुरस्तात्) पूर्व (इति, उक्तम्) यह कह चुके हैं कि (केशश्मश्रु-नखलोमानि) सिर के बाल, डाढ़ी, मोंछ, नख, और रोम, मृतक के कटवा देने चाहिएँ ॥ ५ ॥ (द्विगुल्फम्) बहुत (बर्हिः, आज्यम्, च) कुशा और घृत, इसमें चाहिएँ ॥ ६ ॥ (अत्र) इस प्रेतकर्म में (दधनि) दही में (सर्पिः) घृत को (आ, नयन्ति) मिला कर लाते हैं (आहुति देनेको) (एतत्, पित्र्यम्) यह पितृसम्बन्धिकर्म (पृषदाज्यम्) पृषदाज्यनामक है ॥ ७ ॥ (अथ) फिर (एतां, दिशम्) उस दक्षिण दिशा की तरफ (अग्नीन्, नयन्ति) अग्नि ले जाते हैं (यज्ञ पात्राणि, च)और यज्ञपात्र भी लेजाने चाहिएँ ॥ ८ ॥

हे जीव ! (धर्मणा) धर्म—स्वकृतकर्म के अनुकूल (चक्षुः) तेरा नेत्र, अपने कारणी भूत (सूर्यम्) सूर्य को (गच्छतु) प्राप्त हो और (आत्मा) प्राण (वातम्) बाह्यवायु को प्राप्त हो, और यदि तू ने मुक्त्यनुकूल कार्य्य नहीं किए हैं तो तू (द्यां, च, गच्छ) अन्तरिक्ष को प्राप्त हो (चकारो वार्थकः) अथवा (पृथिवीं,च) पृथिवी को ही प्राप्त हो (वा) अथवा (अपः, गच्छ) जलों को प्राप्त हो (यदि, तत्र) जो वहाँ (ते, हितम्) तेरा कर्मफल, ईश्वरद्वारा स्थापित हुआ हो तो, अथवा

स्वकर्मानुकूल (शरीरैः) शरीर के अङ्गों को ग्रहण करके (ओषधीषु) ओषधियों में (प्रति, तिष्ठ) प्रतिष्ठित हो ॥१॥

हे जीव! तेरा शरीर ही उत्पन्न होकर मरता है और तेरा (भागः) शरीरादि से विलक्षणस्वरूप (अजः) अजन्मा-नित्य है, तू (तम्) उस अपने स्वरूप को (तपसा) दानाध्ययनादिरूप तपसे (तपस्व) ईश्वर करे कि तप्त करे। (ते) तेरे (तम्) शरीररूप भाग को (शोचिः) अग्निहोत्र की ज्वाला (तपतु) तपावे और (ते) तेरे (तम्) उस जीवरूप भाग को (अर्चिः) ईश्वरीय प्रकाश, प्रकाशित करे। हे (जातवेदः) परमात्मन्! (ते) तेरे अधीन (याः) जो (शिवाः, तन्वः) कल्याण करने वाली मनुष्यों की मूर्तियाँ हैं (ताभिः) उन्हीं से (एनम्) इस प्रेत जीव को (वह) लेजा अर्थात् मनुष्यों की योनि ही दे (उ) और (सुकृताम्) पुण्यात्माओं के (लोकम्) लोक को इसे प्राप्त करा ॥२॥

हे (अग्ने) परमात्मन्! (यः) जिस जीवका शरीर भाग (ते) तेरी आज्ञा के अनुकूल (आ,हुतः) चिता में रक्खा हुआ है और (स्वधाभिः) घृतादि हवनीय पदार्थों से (चरति) व्याप्त होरहा है, उस जीवकी (अव) रक्षा कर और (पितृभ्यः) माता पिताओं की सेवा के लिए (पुनः) फिर भी (सृज) उत्पत्ति कर (शेषः) शरीर के नाश होजाने पर अपने स्वरूप भूत जीवसे अवशिष्ट हुवा यह (आयुर्वसानः) आयु को धारण करता हुआ (उप, वेतु) हमारे समीप प्राप्त हो और हे (जातवेदः) उत्पन्नपदार्थमात्र के ज्ञाता परमात्मन्! (तन्वा) सुन्दर शरीर के साथ यह जीव (सं, गच्छताम्) संगत हो ॥३॥

हे जीव! अपने (वर्म) शरीररूपी ढक्कन या कवच को (गोभिः) गोविकार-घृतादि पदार्थों के साथ (अग्नेः) अग्नि से (परि, व्ययस्व) सब ओर से भस्मी भूत कर। और द्वितीय जन्म में ब्रह्मचर्यादिसम्पादन करके (पीवसा, मेदसा) स्थूल मांसादि से अपने आपको (सम्, प्र, ऊर्णुष्व) अच्छे प्रकार ढक। (न, इत) नहीं तो (त्वा) तुझे (हरसा,

धृष्णुः) अपने तेज से दबाने वाला [जर्हषाणः] घृतादि से बार २ प्रसन्न जैसे होने वाला [दधृक्] प्रगल्भ [वि, धक्ष्यन्] विशेष कर जलाने वाला यह अग्नि, तेरे शरीर को [परि, अङ्खयाते] बहुत बार प्राप्त होगा अर्थात् यदि तू सत्कर्मों से जीवन्मुक्त न हुआ तो बार २ जन्म मरण को ग्रहण करना होगा ॥४॥

हे (अग्ने) भौतिकाग्ने ! (त्वम्) तूने (यम्) जिस शरीर को (सम्, अदहः) अच्छे प्रकार जला दिया है (तम्, उ) उसी शरीर को (पुनः) फिर (निर्वापय) शान्त कर अर्थात् परिमित अग्नि जलाना चाहिए जो नियत समय में शरीर को जला कर शान्त कर दे (अत्र) इस स्थान में (कियाम्बु) कुछ जल (रोहतु) उत्पन्न हो और (व्यल्कशा, पाकदूर्वा) विविधशाखावाली पकी हुई दूब पैदा हो ॥५॥ हे जीव ! (प्रवतः) धर्मात्माओं को (महीः) सुखोचित भोग प्रदेशों में (अनु, परेयिवांसम्) क्रम से मरणान्तर प्राप्त कराने वाले (बहुभ्यः) बहुत से सुखार्थियों के लिए (पन्थाम्) सन्मार्ग को (अनुपस्पशानम्) बतलाने वाले (यमम्) जन्म मरणादि द्वारा संयम में रखने वाले (जनानां, राजानम्) सब मनुष्यों के राजा को, जिस से कि (वैवस्वतं, संगमनम्) सूर्यादि की अच्छी तरह गति होती रहती है, उसकी (हविषा) पुरोडाशादि पदार्थों से (दुवस्य) आज्ञापालनरूप सेवा किया कर ॥ ६ ॥ (प्रथमः) सब में मुख्य (यमः) परमात्मा (नः) हम प्रजाओं के (गातुम्) शुभाशुभकर्मों को (वि, वेद) जानता है। अतिशयज्ञान के सम्बन्ध से परमात्मा का (एषा, गव्यूतिः) यह मार्ग-शुभाशुभकर्म जानने का मार्ग (न, अप, भर्तवै, उ) किसी से भी नहीं हटाया जा सकता (यत्र) जिस ईश्वरनिर्दिष्ट मार्ग में (नः) हमारे (पूर्वे, पितरः) पूर्व के पितृ लोग (परेयुः) गए हैं (एना) इसी मार्ग से (जज्ञानाः) उत्पन्न हुए सब प्राणी (पथ्याः, स्वाः) अपने २ अनुकूल कर्मफलों को (अनु) पीछे से प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥ हे जीव ! (मातली) समृद्धिशाली पुरुष, जैसे (कव्यैः) कवियों से (स्वार्थे यत्) और (अङ्गिरोभिः) प्राणविद्या के जानने वालों से जैसे (यमः) इन्द्रियों का संयम करने वाला

और (ऋक्वभिः) ऋचा वाले ईश्वरीय स्तोत्रों से जैसे (बृहस्पतिः) महा विद्वान् (वावृधानः) प्रवृद्ध-प्रसन्न होता है, वैसे तू भी हो (च) और (यान्) जिन को (देवाः) विद्वान् लोग (वावृधुः) प्रसन्न करते हैं (च) और (ये) जो (देवान्) विद्वानों को, प्रसन्न करते हैं, वे परस्पर सुखी रहते हैं । उनमें से (अन्ये) एक देवता लोग (स्वाहा) स्वाहा शब्दोच्चारण पूर्वक हवन आदि से (मदन्ति) प्रसन्न होते हैं और (अन्ये) दूसरे पितृ लोग आदि (स्वधया) पितृ आदिकों के लिए प्रदेय अन्नादि से प्रसन्न होते हैं ॥ ८ ॥ (यम) इन्द्रियों के संयम करने वाले जीव ! यदि तेरे कर्मों के फल भोगने अवशिष्ट हैं तो (इमम्, प्रस्तरम्) इस विस्तीर्ण संसार को फिर (आ, सीद), अच्छे प्रकार प्राप्त हो और [अङ्गिरोभिः, पितृभिः] प्राणविद्या जानने वाले जगत् के रक्षक लोगों के साथ [सं, विदानः) मेल को प्राप्त होकर, विचर । (त्वा) तुझे (कविशस्ताः) विद्वानों से प्रशंसित (मन्त्राः) वेद मन्त्र (आ, वहन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त हों । और (राजन्) सद्गुण से प्रकाशित हुआ तू (एना, हविषा) ऐसे हवनीय पदार्थों से, लोगों को (मादयस्व) प्रसन्न कर ॥९॥ हे (यम) संयमी जीव ! पुनः तू (इह) इस संसार में (यज्ञियेभिः) यज्ञोपयोगी (अङ्गिरोभिः) प्राण विद्या से सहायक (वैरूपैः) विविध प्रकार के पदार्थों के साथ (आ, गहि) आ । और अपने कार्यों से प्राणियों को मादयस्व) प्रसन्न कर । (यः, ते, पिता) जो तेरा पालक है उस (विवस्वन्तम्) सूर्यवत् तेजस्वी परमात्मा का, मैं (हुवे) अपने मन में स्मरण करता हूं, वह परमात्मा (अस्मिन्, बर्हिषि, यज्ञे) इस कुशयुक्त यज्ञ के होते हुए (आ, निषद्य) स्मृत्यारूढ होकर, हमें प्रसन्न करे ॥१०॥ (यत्र) जिस स्थान में (नः) हमारे (पूर्वे, पितरः) पूर्वज पिता पितामहादि (परेयुः) गए हैं (पूर्व्येभिः, पथिभिः) अनादि काल से प्रवृत्त उन्हीं श्रेष्ठ मार्गों से हे जीव ! (प्रेहि २) उसी स्थान को तू अच्छे प्रकार जा । और (उभा, राजाना) दोनों प्रकाशमान (स्वधया, मदन्ता) शुद्ध अन्नादि दान से प्रसन्न होने वाले (यमम्) परमात्मा (च) और (वरुणं, देवम्)

अपने शुद्ध आत्मदेव को (पश्यसि) ईश्वर करे कि देखे ॥ ११ ॥ हे जीव ! (अवद्यम्) पापको (हित्वाय) छोड़कर अपने कर्मानुकूल (पुनः) फिर (अस्तम्) इस संसार रूप गृह में (एहि) आ (पितृभिः) माता पिताओं के साथ (संगच्छस्व) संगति कर (सं,यमेन) इन्द्रियनिरोध से और (इष्टापूर्तेन) यज्ञ, तथा कूपादिनिर्माणरूप परोपकार कर्मों से (परमे, व्योमन्) उत्कृष्ट-स्थान विशेष में स्थित हो। ईश्वर करे कि (सुवर्चाः, तन्वा) सुन्दर चमकने वाले शरीर के साथ (संगच्छस्व) तू संगत हो ॥ १२ ॥ हे श्मशान में आए हुए पुरुषो ! अपइत,) तुम श्मशान से हटजाओ (वीत) और विशेष करके चलेजाओ (वि, सर्पत, च) और इस स्थान को छोड़ कर दूर २ देशों में फैल जाओ (पितरः) पूर्वज संरक्षकों ने (अस्मै) इसी मृतक के लिये (एतं, लोकम्) इस स्थान को (अक्रन्) बनाया है (यमः) परमात्मा ने भी (अस्मै) इसी मृतक के लिये (अहोभिः अद्भिः अक्तुभिः) दिन, रात और जल ही से (व्यक्तम्) शोधित इस (अवसानम्) दहनस्थान को (ददाति) दिया है ॥ १३ ॥ हे जीवो ! (यमाय) परमात्मा की आज्ञा पालने के लिए (सोमम्) सोमलतादि ओषधियों को (सुनुत) खैंचाकरो फिर (यमाय) ईश्वराज्ञापालनार्थ (हविः) हवनीय पदार्थों को (जुहुत) अग्नि में छोड़ा करो (अग्निदूतः) अग्नि है दूत-हवनीयवस्तुओं को पहुंचानेवाला जिसमें ऐसा यह (अरंकृतः) बहुत से द्रव्यों से अलंकृत (यज्ञः) यज्ञ (ह) निश्चय रूप से (यमम्) यम को-वायुमण्डलादि को (गच्छति) प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

हे जीवो ! (यमाय) वायु शोधन वा परमात्मा की प्राप्ति के लिये (घृतवत्) घृतसिश्रित (हविः) हवनीय पदार्थों का (जुहोत) हवन किया करो (च) और (प्रतिष्ठत) ईश्वर की उपासना भी किया करो क्यों कि (देवेषु) सब देवों में (सः) वह ईश्वर ही (नः) हमें (प्रजीवसे उत्तम रूप जीने के लिये (दीर्घम्, आयुः) दीर्घ आयु को (आ,यमत्) देगा ॥ १५ ॥ हे जीवो ! (यमाय, राज्ञे) सब जगत् के राजा परमात्मा की प्राप्ति के लिये (मधुमत्तमं, हव्यं) बहुत ही मीठे होम के योग्य पदार्थों

को जुहोतन) होमाकरो । (पूर्वजेभ्यः) सृष्टि की आदि में उत्पन्न (पूर्वेभ्यः) हम सब से पहले वर्तमान (पथिकृद्भ्यः) सन्मार्ग के निरूपक (ऋषिभ्यः) ऋषियों के लिए (इदं नमः) यह हमारा प्रत्यक्ष रूप से नमस्कार हो, ऐसा व्यवहार करो ॥ १६ ॥ हे जीवो ! (यामः) याति गच्छति अस्मिन् इति यामः संसाररूपो रथः । प्राणिसमुदाय जिस में बैठ कर बहा जारहा है ऐसा संसार रूप रथ (कृष्णाः) काला तमोगुणमय और (श्वेतः) सत्व गुणमय (अरुषः) प्रत्यक्ष रूप से प्रकाशित (ब्रध्नः) बहुत बड़ा ऋजूः धीरे २ चलने वाला (उत) और (शोणः) रक्तवर्ण-रजोगुणमय (यशस्वान्) ऐश्वर्य कीर्ति वाला वा अनेक प्रकार के धनवाला है इस (हिरण्यरूपम्) सुवर्णादि से युक्त संसाररूप रथ को (जनिता) सर्वोत्पादक परमात्मा ने ही (जजान) उत्पन्न किया है ॥ १७ ।

(साधिपतिकेभ्यः) जीव सहित (प्राणेभ्यः) प्राणोंके लिये (स्वाहा) सुहुत हो, वा सत्यक्रिया हो, वा स्वाहाशब्द का प्रयोग किया करो । आगे के सब शब्दों के अर्थ स्पष्ट हैं । अग्रिम (ब्रह्महत्यायै) का अर्थ है ब्रह्महत्याकी निवृत्तिके लिए (द्यावापृथिवीभ्याम्) अन्तरिक्ष और पृथिवी की शुद्धि के लिये इत्यादि श्री स्वामीजी कृत यजुर्वेद भाष्य में स्पष्ट है ॥ १ ॥

(एकेभ्यः) किन्हीं २ पितृलोकों के लिए, उनकी रुचि के अनुसार (सोमः, पवते) सोमलता का रस दिया जाता है एके (कोई) (घृतम्) घी का ही विशेष कर (उपासते) उपभोग करते हैं और (येभ्यः) जिनके लिए (मधु) शहद आदि मिष्ट पदार्थ (प्र, धावति) प्राप्तहोता है, वे सब उत्कृष्ट कोटिके पुरुष हैं, ईश्वर करे कि हे जीव ! तू (तान्, चित्, एव, अपि) उन्हीं को ही (गच्छतात्) प्राप्त हो ॥२॥

(ये, चित्) जो कोई (पूर्वे) पूर्वज (ऋतसाताः) सत्य का व्यवहार करने वाले हैं, (ऋतजाताः) यज्ञ करने वाले हैं (ऋतावृधः) सत्य को बढाने वाले-प्रचार करने वाले हैं, ऐसे ही (तपस्वंतः, ऋषीन्) तपस्वी

ऋषियों को, वा (तपोजान्, अपि) उन तपस्वियों से उत्पादित लोकों को, हे (यम) संयम करने वाले जीव ! ईश्वर कृपा से तू (गच्छतात्) प्राप्त हो ॥ ३ ॥

(तपसा) अपने धर्मार्थ क्लेश सहन करने से (ये) जो (अनाधृष्याः) किसी से नहीं दबाए जा सकते, [ये] जो [तपसा] शीतष्णादि द्वन्द्व सहन रूप तप से (स्वर्ययुः) स्वर्ग-उत्तम लोकों को प्राप्त हुए (ये) जो (महः) बड़ा (तपः) तप (चक्रिरे) कर चुके हैं ० शेष पूर्ववत् ॥ ४ ॥

(ये, शूरासः) जो शूरवीर (प्रधनेषु) संग्रामों में (युध्यन्ते) लड़ाई करते हैं और (ये) जो (तनूत्यजः) शरीर छोड़ देते हैं । (वा) अथवा (ये) जो (सहस्रदक्षिणाः) यज्ञादिकों में हजारों वस्तुओं का दान करते हैं ० शेष पूर्ववत् ॥ ५ ॥

हे (पृथिवि) पृथिवि ! (अस्मै) इस मृतकादि के लिए (अनृक्षरा) कण्टकादिरहित (निवेशनी) विस्तृत स्थान देने वाली (स्योना) सुख देने वाली, ईश्वर करे कि (भव) हो और (अस्मै) इस जोव के लिए (सप्रथाः) विस्तीर्ण (शर्म) सुख को (यच्छ) दे । अर्थात् मृतकादि के लिए विस्तृत और सब तरह अनुकूल पृथिवी होनी चाहिये ॥ ६ ॥

हे (जीवाः) जीवो ! (इमम्) इस जीवके देह को (गृहेभ्यः) घरों में ही रहने के लिए (अप) इस के कर्मों के प्रतिकूल (अरुधन्) तुम लोगों ने घेर रक्खा था, परन्तु यह कर्मानुसार मरण पा चुका है यह लौट कर नहीं आसकता (तत्) इस कारण से (परिग्रामादितः) फिर अपने समूह आदि बना कर (निर्वहत) संसार में निर्वाह करो । (प्रचेताः, यमस्य) उत्कृष्ट ज्ञान वाले परमात्मा का (मृत्युः दूतः, आसीत्) मृत्युदूत है, उस ने (पितृभ्यः) चन्द्रकिरणों में वा वायु मण्डल में जाने के लिए (असून्) इसके शरीरस्थ प्राणों को (गमयाञ्चकार) पृथक् कर दिया है अतः अब शोक करना व्यर्थ है ॥ ७ ॥

हे जीवो ? तुम ऐसा समझो कि— (यमः) सब जगत् को नियम में रखने वाला (परोवरः) बड़ों से भी बड़ा (विवस्वान्) सूर्यवत् तेजस्वी,

परमात्मा है (ततः, परे) उस से बड़ा (किञ्चन) किसी वस्तु को भी (न, अति, पश्यामि) मैं ठीक प्रकार से नहीं देखता हूं । (यमे) परमात्मा की प्राप्ति के निमित्त ही (मे, अध्वरः) मेरा यज्ञादि परोपकारी कर्म (अधि, नि,विष्टः) स्थापित हुआ है और (भुवः) पृथिव्यादि मण्डल को भी (विवस्वान्) परमात्मा ने ही (अनु, आ, ततान) अनुकूल रूप से अच्छे प्रकार विस्तृत किया है ॥ ८ ॥

(अमृताम्) प्रलयकाल पर्यन्त नित्यरूप से रहने वाली सरण्यू-सूर्य की गति को (मर्त्येभ्यः) मनुष्यों के कार्यसम्पादनार्थ, विद्वानों ने (सवर्णाम्, कृत्वा) एकसा स्वरूप वाली समझ करके (अप, अगूहन्) अपने हृदय में छुपा रक्खा है अर्थात् जान लिया है और उस को (विवस्वते, अददुः) सूर्य के अधीन समझा है (उत) और (यत्, तत्, आसीत्, सरण्यूः) जो वह प्रसिद्ध सूर्य की गति है, वही (अश्विनौ) प्राण और अपान वायु को (अभरत्) पोषण करती है और (द्वा, मिथुना) दो दिन रात्रि आदि रूप जोड़ों को (अजहात्, उ) बनाकर छोड़ती ही रहती है, अर्थात् दिन रात्रि की तरह, स्त्री और पुरुषों का प्रतिदिन वियोग और संयोग होता ही रहता है इस से शोक करना व्यर्थ है ॥ ९ ॥

हे जीवगण ! (ते, असुनीताय) तेरे--प्राणों को प्राप्त हो चुकने वाले मृतशरीर को (वोढवे) वहन करने के लिए—सद्गति प्राप्त करने के लिए (इमौ, वन्ही) स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकार की अग्नियों को मैं ईश्वर (युनज्मि) युक्त करने की आज्ञा देता हूं (ताभ्याम्) उन दोनों वन्हियों के द्वारा तू अपने शरीर को (यमस्य, सादनम्) वायु मण्डल के स्थान को (च) और (समितीः) श्रेष्ठ गतियों को (अव, गच्छतात्) प्राप्त हो ॥ १० ॥

(रयिमते) अरोगता और हीरा आदि रूप धन सम्पादन करने वाले (अग्नये) अग्नि के लिए (स्वाहा) सुहुत हो । (रोगों का नाशक और हीरा आदि में ज्योति पहुंचाने वाला अग्नि ही है) ॥ १ ॥

हे (पुरुषस्य, सयावरि) पुरुष के—सूक्ष्मशरीर विशिष्ट पुरुष के साथ जाने वाली कर्म संस्कार शक्ति! (अघानि) पापों को (अपेत्) हटाकर ही, हम (मृज्महे) आत्मशोधन की प्रतिज्ञा करते हैं (जरसः, पुरा) वृद्धावस्था से पूर्व (अत्र) इस संसार में (यथा) जिस प्रकार से (नः) हमारे बीच में (अपरः) कोई पाप (न, आयति) न आवे, वैसे ही हम निष्पाप होने की प्रतिज्ञा करते हैं ॥ २ ॥ (ये) जो (एतस्य) इस मृत पुरुष के लिङ्गशरीर के (पथः) मार्ग के (गोप्तारः) रक्षा करने वाले चन्द्रकिरण, वायु आदि हैं (तेभ्यः) उनके लिए० ॥ ३ ॥ (रक्षितारः) रक्षा करने वाले ओषधि आदि पदार्थ ० शेष पूर्ववत् ॥ ४ ॥ (अभि, रक्षितारः) सब प्रकार से रक्षा करने वाले ईश्वरीय गुण० शेष पूर्ववत् ॥ ५ ॥ (ख्यात्रे) कीर्तियों के प्रकट करने वाले के लिये। (अपाख्यात्रे) अपकीर्ति के प्रकट करने वाले के लिए। (अभि, लालपते) विद्वानों के संमुख जीवों के सुकृत को अच्छे प्रकार कहने वाले के लिए। (अप, लालपते) जीवों के सुकृत को न कहने वाले के लिए। (कर्मकृते, अग्नये) इस अग्निहोत्रादि कार्य के करने वाले अग्नि के लिए। (अत्र) यहाँ (यम्) जिस उपयुक्त वस्तु को (न, अधीमः) नहीं स्मरण करते हैं (तस्मै) उस वस्तु के लिये। (वैश्वानराय) सब मनुष्यों के हितकारी (अग्नये) अग्नि के लिए (सुवर्गाय, लोकाय) सुन्दर स्थान की प्राप्त्यर्थ। (यमः, ह, देवः) जगत् को नियम में रखने वाला प्रसिद्ध देव (सुमनाभिः, ऊतिभिः) प्रशंसनीय रक्षाओं के साथ, वा स्तुतियों से, हमें (आ, यातु) अच्छे प्रकार प्राप्त हो। (वा) और (इह) यहाँ--संसार में (प्र, यताभिः) वेदों में नियत स्तुतियों से (अक्ता) सम्बद्ध–हमारी वेला हो। (मम) मुझ यजमान के (सु, प्र, यते, ह, बर्हिषि) अच्छे प्रकार नियमित और प्रसिद्ध विस्तीर्ण यज्ञों में (ऊर्जाय) अन्नादि की सिद्धि के लिये (जात्यै) उत्तमजाति--जन्म मिलने के लिये (शत्रु हत्यै) कामादि शत्रुओं का नाश करने के लिये, (किए हुए उन यज्ञों में) स्त्री समुदाय और पुरुषसमुदाय (आ, सीदताम्) ईश्वर करे कि बैठा करें ॥ १३ ॥

(यः) जो यम (कोष्ठयः) कोष्ठ–सम्पूर्ण धनके योग्य है और (एकः, इत्) एकही (अस्य, पार्थिवस्य, जगतः) इस पृथिवी में होने वाले चराचर जगत् का (वशी) वश में करने वाला है और (यः) जो (अनपरोध्यः, राजा) किसी से न रोका जाय ऐसा प्रकाशमान है उसी (यमम्) नियामक परमात्मा के प्रति, हे जीवगण! (भद्गयश्रवः) संगीतशास्त्रोक्त रीति के योग्य और श्रवणीय गीतविशेष को (गाय) गान किया कर १४॥

"यमम्०" इत्यादि पूर्ववत्। (येन) जिस ईश्वर ने (आपः) जल वा जगत् के सूक्ष्म कारण, (नद्यः) नदियाँ (धन्वानि) जलशून्यदेश, धारण कर रक्खे हैं और (येन) जिसने (दृढ़ा, पृथिवी) इस स्थूल पृथिवी को धारण किया है, उसी के उद्देश्य से गान किया करो॥ १५॥

(यमः, राजा) जो जगत् का नियामक राजा है, वही (अनःशतः) प्राणाधार असंख्य जलोंका देने वाला हमें (दानम्) दानशक्ति को देवे। वही राजा (हिरण्यकक्ष्यान्) चमकीले प्रदेशों वाले (सु,धुरान्) अच्छे भार वाले (हिरण्याक्षान्) सुन्दर–विशुद्ध व्यवहार वाले (अयःशफान्) लोहमय पदार्थ जिनमें गतिसाधन-शफ खुर जैसे हैं ऐसे (अश्वान्) वेगसे चलने वाले पृथिव्यादिमण्डलों के (अभि, तिष्ठति) सब तरफ़ से स्थित है॥ १६॥

(यमः) नियामक ईश्वरने (पृथिवीम्) पृथिवी को (दाधार) धारण कर रक्खा है और (यमः) यम ने ही (इदं, विश्वं, जगत्) यह सब जगत्, धारण कर रक्खा है। (यमाय) यम के नियम के ही अनुकूल (सर्वम्, इत्) सब ही (तस्थे) स्थित है (यत्) जो कुछ (प्राणत्, वायुरक्षितम्) चेष्टा करने वाला–वायु से रक्षित है वह सब॥ १७॥

(यथा) जैसे (पञ्च) पांच–महाभूत पृथिव्यादि और (यथा) जैसें (षट्) छः ऋतुएँ वसन्तादि और (यथा) जैसे (पंचदश) १५ तिथियाँ तथा (ऋषयः) वशिष्ठादि नामक चलने वाले ७ सात तारे, वर्तमान हैं उस सब प्रकारको (सः) वह पुरुष (ब्रूयात्) कहनेको समर्थ होगा, (यः) जोकि (यमम्) ईश्वरीय नियम को (विद्यात्) जानेगा (यथा) जैसे

कि (एकः, ऋषिः) एक ही सर्वज्ञ परमात्मा (वि,जानते) अच्छी तरह जानता है, वैसेही ॥ ईश्वर ही सब जगत् का नियन्ता है–यथोचित रूप से प्रवर्तक है, ईश्वर के माहात्म्यको जानकर कुछ कह सकता है ॥ १८ ॥

(त्रिकद्रुकेभिः) त्रिकद्रुक नाम के यज्ञ विशेषों से (षट्, उर्वीः) छः वस्तुओं को अन्तरिक्ष, पृथिवी, जल, ओषधि, बल और सत्यवाणी इन ६ वस्तुओं को (पतति) प्राप्त होता है। (बृहत्) सब से बड़ा–ब्रह्म (एकम्, इत्) एक ही है (गायत्री, त्रिष्टुप्, छन्दाँसि) गायत्री, त्रिष्टुप् आदि नामक छन्द और (सर्वा, ता) सब जगत की वस्तुएँ (यमे, आहिता) परमात्मा में ही स्थित हैं (इति सायणाचार्यः) ॥ १९ ॥

(पञ्चभिः, मानवैः) मनुष्य सम्बन्धी पञ्च महाभूतों के संयोग वियोग से (अहरहः) प्रतिदिन (गाम्, अश्वम्, पुरुषं, जगत्) गौ, घोड़े, मनुष्य आदि रूप जगत् को (नयमानः) अवस्थान्तर को प्राप्त कराता हुआ (वैवस्वतः, यमः) सूर्यादि का नियामक ईश्वर (न, तृप्यति) तृप्ति–बस हो चुका–ऐसी तृप्ति को नहीं प्राप्त होता ॥ २० ॥

(वैवस्वते, यमे, राजनि) सूर्यादि नियामक परमात्मा के राजा होते हुए ही (ये) जो (इह) इस संसार में (च शब्दोवाक्यालङ्कारे उ शब्दश्च पादपूरणे) (सत्येन, इच्छन्ति) सचाई के साथ अपने व्यवहारों की इच्छा करते हैं (च) और (ये) जो (अनृतवादिनः) झूठ बोलने वाले हैं (ते, जनाः) वे उभय प्रकार के पुरुष, सुख और दुःख भोगने के लिये (वि, विच्यन्ते) पृथक् २ किए जाते हैं ॥ २१ ॥

हे (राजन्) प्रकाशमान परमात्मन् ! (इह) इस संसार में (ते) वे दोनों प्रकार के पुरुष-धार्मिक और अधार्मिक (वि, विच्यन्ते) मरणानन्तर पृथक् २ किये जाते हैं (ये, देवान्, नमस्यन्ति) जो विद्वानों को नमस्कारादि से सत्कृत करते हैं (च) और जो (ब्राह्मणान्, अप, चित्यति) ब्राह्मणों की–वेदवेत्ताओं की सेवा करते हैं, वे (त्वाम्, उप, यान्ति) तेरे सामीप्य को प्राप्त होते हैं (अथ) और जो विरुद्धाचारी हैं वे संसार में गिरते हैं ॥ २२ ॥

(यस्मिन्, सुपलाशे, वृक्षे) जिस सुन्दर ढाक जैसे संसाररूप वृक्ष में (ऊपर से सुन्दर मालूम हो और भीतर से निःसार हो--सुगन्ध रहित हो) (देवैः) विद्वानों से ही (यमः) परमात्मा (सं, पिबते) अच्छे प्रकार देखे जाते हैं (अत्र) इसी संसार में (विश्पतिः) प्रजाओं का पालक (नः) हमारा (पिता) पितृतुल्य रक्षक (पुराणाः) पुराणी--अनादिकाल से प्रवृत्त सूर्यादि निर्माण की रीतियों को हाँ (अनु, वेनति) अनुकूलता से चलाए रहता है, उसी के लिये (स्वाहा) धन्यवादपूर्वक सुहुत हो ॥ २३ ॥

ईश्वर का जीवों के प्रति उपदेशः—हे जीवगण! तुम्हारे लिए ही (पृथवीम्) इस पृथिवी को (उत,तभ्नोमि) अच्छी तरह प्रतिबद्ध किए हुए हूं। हे पृथिवि! (त्वत्, परि) तेरे ऊपर (इमं, लोकम्) इस प्राणि समूह को (नि, दधन्) स्थापित करता हुआ (मो, अहं, रिषम्) मैं किसी को पीड़ा नहीं पहुंचाता (एतां, स्थूणाम्) इस जगद्व्यवहार रूपी स्तम्भ को (ते, पितरः) तेरे समुदाय में जो विज्ञान प्रचारादि द्वारा संरक्षक हैं, वे (धारयन्तु) धारण करें—चलावें (अत्र) इस संसार में (ते) तेरे लिए (यमः) प्रजा को नियम में रखने वाला संयमी पुरुष (सादनात्) स्थिति करने के हेतु से, स्थान को (मिनोतु) परिमित करे बनावे ॥ २४ ॥

(यथा) जैसे अहानि दिन (अनुपूर्वम्) अनुक्रम से--सिलसिलेवार (भवन्ति) होते रहते हैं और (यथा) जैसे (ऋतवः) वसन्तादि ऋतुएँ (ऋतुभिः) उत्तरोत्तर ऋतुओं के साथ (क्लृप्ताः) सम्बद्ध हो कर (यन्ति) आते जाते रहते हैं और (यथा) जैसे (पूर्वम्) पूर्व पुरुष को (अपरः) दूसरा पुत्रादि (न, जहाति) नहीं छोड़ता है। (एव) ऐसे ही, हे (धातः) प्रजापते! (एषाम्) इन सब प्राणियों के (आयूंषि) जीवनों को (कल्पय) सम्पादन करने की शक्ति दे ॥ २५ ॥

हे (अग्ने) अग्ने! परमात्मन्! (ते) तेरी सृष्टि में (मर्त्यः) कोई भी मनुष्य (तनुवे) अपने शरीर के लिये (क्रूरम्) प्राणीघातक व्यापार को

(नहि, चकार) न करे (कपिः) बन्दर की तरह चेष्टा करने वाला यह रजोगुणी जीव (पुनः) विशेष कर (तेजनम्) अपने उत्साह को (बभस्ति) दीपित करता रहे । (गौः) गौ (इव) जैसे (जरायुः) जेरकी, उत्साह से रक्षा करती है, वैसेही उत्साह से अपनी रक्षा करता रहे, हे (अग्ने) परमात्मन्! (नः) हमारे (अघम्) पाप, दुर्व्यसन, और दुःखों को, कृपाकर (अप, शोशुचत्) पृथक् करके जला दीजिए और (रयिम्) हमारे धनोंको (शुशुध्या) विशेष कर शुद्ध कीजिये अर्थात् हम अधर्म से धन इकट्ठा न करें ० शेष तुल्य, (मृत्यवे) स्वकर्मानुसार होने वाले इस मृत्यु-प्राणवियोग के लिए यह अन्तिम (स्वाहा) सुहुत हो॥२६॥

इत्यन्त्येष्टि प्रकरणम् ॥

श्रीमत्पण्डित नन्दरामतनूजेन–आगरानिवासिना– भीमसेन शर्मणा विरचिता संस्कारचन्द्रिका पूर्तिं गता ॥



अन्त्येष्टि संस्कार की व्याख्या।

भारतवर्षीय आर्य्यों में आदि सृष्टि से लेकर आज तक जलाने की प्रथा चली आरही है* "मोडर्न क्रीमेशन-इट्स हिस्टरी एन्ड प्रैक्टिस" नामी प्रसिद्ध पुस्तक के रचियिता सर टोम्पसन महोदय ने दर्शाया है कि युरोप के इटली आदि देशों में प्राचीन काल में यही प्रथा थी, इस की दिनों दिन युरप में अब वृद्धि हो रही है और सब से उत्तम एक मात्र यही जलाने की क्रिया हो सकती है। इंगलैंड के सुप्रसिद्ध विद्वान् जिन को पश्चिमी लोग आज कल के वहाँ के तत्त्ववेत्ताओं का मुकट मानते हैं वह हर्बर्ट स्पेन्सर थे। जब इनका स्वर्गवास हुआ तो इनकी अन्तिम इच्छा के अनुसार इनका मृतक शरीर जलाया गया जिसका भारी प्रभाव पड़ा। अब लंडन में सरकारी श्मशान बन गया है और सैकड़ों मुरदे पदार्थविज्ञान (सायंस) से प्रेम रखने वालों के प्रत्येक वर्ष जलाए जाते हैं।

---

* Modern Cremation its History and Practice, by Sir H. Thompson. F. R.C.S.M.B.—London.

मृतकशरीर जलाने के दो मुख्य लाभ हैं उनको यूरोप की पण्डित मण्डली मुक्तकण्ठ से स्वीकार कर चुकी है। वे लाभ यह हैं:—

(१) मृतकशरीर के जलाये जाने से किसी भी संचारक अथवा भयंकर रोग के रहने वा फैलने का भय नहीं रहता क्योंकि आग से बढ़ कर कोई भी रोगनाशक पदार्थ नहीं है।

(२) थोड़े से स्थान में एक वर्ष में हज़ारों मुर्दे जलाये जा सकते हैं। क़ब्र स्थानों के निमित्त सदैव के लिये व्यर्थ भूमि रुक जाने से कृषि कर्म तथा नगरों की आबादी को हानि पहुंचती है।

यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र १५ में लिखा है कि मृतकशरीर को जला कर भस्म कर देना चाहिये और यही बात अन्त्येष्टि संस्कार के मूल की बोधक भी है।

जो विधि संबन्धी सूत्र दिये हैं उन में यह बातें पाई जाती हैं—

(१) पहिले सूत्र में दर्शाया है कि जलाने की वेदी आग्नेयी दिशा वा नैर्ऋत्य दिशा में हो।

इस का भाव यह है कि श्मशान वा वेदी वस्ती की आग्नेयी वा नैर्ऋत्य दिशा में बनानी चाहिये।

(२) दक्षिण दिशा की तरफ जो गढ़ा खोदा जावे वह दक्षिण दिशा से पूर्व की ओर झुका हुआ हो अथवा नैर्ऋत्य दिशा की ओर हो।

दूसरे सूत्र में विकल्प पक्ष से यह दिखाया है कि यदि आग्नेयी वा नैर्ऋत्य कोणमें ठीक २ न भी बनावें तो आग्नेयी वा नैर्ऋत्य कोणों में किसी एक के निकट हो।

(३) जितने परिमाण में ऊंचे को भुजा उठाये हुए मनुष्य होता है, उतने परिमाण में वह गढ़ा लंबा होना चाहिये।

इस का भाव यह है कि वेदी मनुष्य के कद से एक हाथ अधिक लंबी होनी चाहिये।

(४) १२ अंगुल नीचे गहरी होनी चाहिये।

(५) सिर के बाल, डाढ़ी, मूंछ, नख और अन्य बाल मृतक के कटवा देने चाहियें।

ऐसा प्रतीत होता है कि बाल, नख आदि यदि कैंची से काट दिये, जावें तो स्नान कराने वालों को उस के स्नान कराने में सुविधा होगी नहीं तो केश, डाढ़ी के बाल, ठीक २ धोने में कठिनाई पड़ती है। पर आज कल लोग इस पर नहीं चलते, उसके न चलने का भी कारण यह है कि वह मृतक के कटे हुए बाल भी तो फिर पृथक् लेजा कर या तो शव के साथ जलाने वा दूर जंगल में गढ़े में गाड़ने होंगे। उस अड़चन से बचने के लिये लोग बाल काटते नहीं।

(६) कुशा और घृत दोनों अधिक परिमाण में इस में चाहियें।

कुशा और घृत दोनों ही विषवाशक हैं यह आयुर्वेद के मूलग्रन्थ चरक और सुश्रुत दोनों का मत है।

(७)* दही में घृत मिलाकर आहुति देनी चाहियें।

(८) फिर दक्षिण दिशा की तरफ़ अग्नि लेजाते हैं और यज्ञपात्र भी लेजाने चाहियें।

दक्षिण दिशा से अभिप्राय श्मशान का है, जो बस्ती की दक्षिण दिशा को होता है। इसका भाव यह है कि यज्ञपात्र और अग्नि कहीं से लेजानी चाहिये। गुजरात देश में एक हँडिया में आग पर उपले रखकर ले जाते हैं। किसी और शव से आग लेना ठीक नहीं इस लिये आग और यज्ञपात्रों का प्रबन्ध करके श्मशान में जाना चाहिये।

इन सूत्रों के पश्चात् भाषा में जो लेख है उसका सार यह है कि:—

(१) स्त्री के मृतक शरीर को स्त्रियाँ और पुरुष के मृतक शरीर को पुरुष स्नान करावें और चन्दन आदि सुगन्ध लेपन और नवीन वस्त्र धारण करावें।

---

*सुनने में आया है कि यदि किसी मकान आदि में आग लग जावे तो तुरन्त ही उस अग्निदग्ध स्थान के ऊपर थोड़ा सा दही डालने से अग्नि का बल अधिक नहीं बढ़ता। तथा प्रत्यक्ष यह भी देखने में आया है कि आग से शरीर जल जाने पर उस जले हुये स्थान पर दही बाँधते हैं जिस से उस स्थान का अग्निजलित दाह शान्त हो जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि दही के उपयोग से अग्नि के द्वारा उत्पन्न हुई गर्मी या दाह को कम करते हैं। यहाँ घी में दही मिलाने का अभिप्राय यह है कि अन्त्येष्टिकर्म के आरम्भ में ही अग्नि घृताहुतियों से इतनी प्रचण्ड न हो जावे कि आगे निकट बैठे या खड़े होकर भी शेषक्रिया समाप्त करनी कठिन वा असम्भव हो जावे क्योंकि यह तो निश्चय ही है कि थोड़ी ही देर में लकड़ियें अधिक होने के कारण अग्नि की तीव्रता बहुत अधिक बढ़ जावेगी। अतः दही मिलाने का अभिप्राय अग्नि की प्रचण्डता को रोकने के लिये ही है। सूत्रकार ने घृत और कुश तो बहुत परिमाण में लेना लिखा है पर दही के विषय में ऐसा विधान न होने से जानना चाहिये कि आरम्भ की ५। १० आहुतियों के लिये लेना चाहिये जो कि पर्याप्त ठीक होगा।

(२) जितना उस के शरीर का भार हो उतना घृत और यदि अधिक ले सकें तो अधिक लेवें ।

श्रीमान् लोग शरीर के जितना चंदन भी लें । सेर भर घी के लिये १ रत्ती कस्तूरी और एक माशा केशर लेना चाहिये ।

घृत में चंदनचूरा यथाशक्ति डालें ।

कपूर की लकड़ी वा पालाश आदि की बड़ी २ लकड़ी शरीर के भार से दूनी लेनी चाहियें ।

(३) यदि पुरानी वेदी बनी हुई न हो तो नई वेदी भूमि में खोदे । श्मशान का स्थान वस्ती से दक्षिण तथा आग्नेय अथवा नैऋत्य कोण में हो ।

(४) मृतक का शिर उत्तर, ईशान वा वायव्य कोण में और पग दक्षिण, नैऋत्य वा आग्नेय में रहें ।

(५) मृतक के पग की ओर वेदी के तले में नीचा और शिरकी ओर थोड़ा ऊँचा रहे ।

(६) वेदी का परिमाण–पुरुष खड़ा होकर ऊपर को हाथ उठावे उतनी लम्बी और दोनों हाथों को उत्तर दक्षिण पार्श्व में करने से जितना परिमाण हो अर्थात् मृतक के साढ़े तीन हाथ अथवा तीन हाथ से ऊपर चौड़ी होवे और छाती के बराबर गहरी ।

(७) नीचे आधा हाथ अर्थात् एक बीता भर रहे । उस वेदी में थोड़ा २ पानी छिड़कावे यदि गोबर उपस्थित हो तो लेपन भी करदे उस में नीचे आधी वेदी तक लकड़ियाँ चिनी जाती हैं अर्थात् बराबर जमा कर लकड़ियाँ धरे ।

(८) लकड़ियों के बीच में थोड़ा २ कपूर थोड़ी २ दूर पर रक्खे उसके ऊपर मध्य में मृतक को रक्खें चारों ओर वेदी खाली रहे और तथा ऊपर चन्दन, पलाश आदि के काष्ठ, बराबर चिने । वेदी से ऊपर एक बीता भर लकड़ियाँ चिने जब तक यह क्रिया होवे तब तक अलग चूल्हा बना, अग्नि जला, घृत को—ता, छान कर पात्रों में रखे ।

(९) उन घृतपात्रों में कस्तूरी आदि पदार्थ मिलावे ।

(१०) चार मज़बूत लम्बे डंडों के साथ चार लकड़ी वा लोहे के

चमचे जिस एक चमचे में आधी छटांक से ऊपर एक छटाँक घी आवे लोहे के तार वा लोहे की कीलों से दृढ़ बांधे।

(११) फिर घृत का दीपक जला कर कपूर में आग लगा शिर की ओर से अग्निदाह आरम्भ कर पादपर्यन्त मध्य२में अग्नि प्रवेश करावे।

व्याख्या।

उपर्युक्त दो गृह्य सूत्रों में श्मशान, बस्ती के दक्षिण वा दक्षिण के दायें बायें कोण में हो ऐसा पाया जाता है। इस का कारण यह है कि भारतवर्ष में जहाँ तक हम को अनुभव हुआ है उत्तर और पश्चिम की ओर से वायु चलती रहती है दक्षिण अथवा उसके दोनों कोणों से, जिनको आग्नेयी, और नैर्ऋत्य, कहते हैं पवन प्रायः नहीं चलती। इस लिये मृतक शरीर के जलने की वायु बस्ती में न जावे ऐसा प्रयोजन प्रतीत होता है। तीसरे सूत्र में जो शव से एक हाथ लम्बी वेदी खोदने को कहा है वह उचित ही है। चौथे सूत्र में जो बारह अंगुल खोदनी लिखी है वह भी उचित ही है क्योंकि यदि इतनी गहरी न खोदी जावेगी तो लकड़ियाँ अग्नि के ताप से गिर पड़ेंगी। अमृतसर में हमने देखा है कि लोग कुछ भी गहरी वेदी नहीं खोदते केवल भूमी पर शव जलाते हैं, इस लिये उन को लोहे के कई डण्डे चिता के पास लकड़ियों को गिरने से रोकने के लिये लगाने पड़ते हैं। गुजरात में प्रायः वेदी खोद कर जलाते हैं, यहाँ उन डंडों के लगाने की जरूरत नहीं होती। सूत्र ५, ६, ७, और ८ की व्याख्या हम ऊपर कर चुके हैं अब जो "संस्कारविधि" का भाषा लेख है उसके संबन्ध में कुछ कहना है—वहाँ लिखा है कि 'मृतक शरीर को इस प्रकार रक्खे कि उसका शिर उत्तर वा उसके दो कोण अर्थात् ईशान व वायव्य में रहे और पग दक्षिण वा नैर्ऋत्य वा आग्नेय कोण में हों जिस प्रकार पृथ्वीपर उत्तर ध्रुव में विद्युत् का पुंज है उसी प्रकार शरीर में, शिर में विद्युत रहती है। शिर की विद्युत् जो मृतक शरीर को छोड़ती हुई अपने भंडार की ओर उत्तर को जा रही है वह सहज रूप से जा सके।

वेदी ढलवाँ हो अर्थात् शिर की ओर, पग की ओर से कुछ ऊंची

रहनी चाहिये । यदि शिर की ओर कुछ ऊंची न रक्खी जायगी तो जिस समय अग्नि टाँगों वा पग में प्रवेश करेगी तो टांगें, जैसा कि लोग जानते हैं, पीछे को सुकड़ती हैं और उस समय शिर पीछे को कुछ धक्का सा पाकर गिर वा सटक सकता है । ग्रामों में लोग कहा करते हैं कि मुरदा उठ खड़ा होता है अर्थात् अपनी जगह से सटक जाता है । इस सटकने के रोकने के लिये दो उपाय किये जाते हैं (१) तो शिर की तरफ़ ज़रा ऊंची रहे ताकि टांगों के सुकड़ने पर शिर पीछे को न सटक सके (२) छाती और शिर के ऊपर मोटी २ भारी लकड़ियाँ रक्खी जावें और शिर तथा छाती के गिर्द ज़मीन से वहाँ तक आने वाली लकड़ियाँ भी डालू हों । अग्नि प्रवेश होने पर, अग्नि प्रदीप्त करने के लिये ५ मन्त्रों से पाँच आहुतियाँ देवे ।

फिर चार मनुष्य पृथक् २ खड़े होकर आहुति डालते जावें । यह खड़े होने वाले उस ओर से बचकर खड़े हों जिधर की वायु हो । इन चार मनुष्यों को सहायता देने के लिये बारी २ से और मनुष्य इनका हाथ बटाते रहें ताकि सब बारी २ विश्राम ले सकें । गरमी के दिनों में चिता से दूर रहकर अधिक लंबे बांसों से काम लेना चाहिये । वर्षाऋतु में किसी बड़ आदि वृक्ष के नीचे चिता हो या डंडे लगा कर उस पर लोग छत बना रक्खें । मन्त्र पढ़ने वाली मंडली उचित स्थान पर खड़ी वा बैठ कर मन्त्र पढ़ सकती है । कई देशों में जब शव को उठाते हैं तो "राम राम सत्य है" ऐसा शब्द उठाने वाले बोलते चले जाते हैं, यह सुन कर लोग रस्ते से हट जाते हैं, कई विद्वान् उसकी जगह "ओम् ओम् सत्य है" ऐसा बोलने लग गये हैं । इस से उठाने वाले ईश्वर का नाम लेते हुए मानो लोगों को सूचना दिये जारहे हैं कि मृतक ले जारहे हैं । कई लोग वृद्ध पुरुष या स्त्री की मौत पर आगे बाजे बजाते चले जाते हैं । "संस्कारविधि" में यह बातें नहीं लिखीं, लोग अपनी बुद्धि, द्रव्य, शक्ति और देश काल का विचार कर स्वयं कर सकते हैं ।

हमने एक सूत्र ग्रन्थ में पढ़ा था कि जिस के यहां मौत होगई हो-- उसके घर में ज्ञाति वाले वा मित्र लोग उस दिन भोजन पहुंचावें । यह

क्या ही अच्छी बात है। क्योंकि शोक के मारे घर वाले कैसे बना सकते हैं ? आज कल हिंदुओं में रिवाज़ भी है कि सगे सम्बन्धी उस दिन वा दो तीन दिन रोटी आदि अपने घर से पका कर भेज देते हैं। फिर उसी ग्रन्थ में लिखा था कि रात को सगे तथा मित्र सोने के लिये जाया करें। हिंदुओं में यह प्रथा जारी है, दस दिन तक सोने के लिये मित्र सगे जाते और धैर्य बँधाते हैं। संस्कारविधि में यह बातें नहीं लिखी गईं इस लिये कई पुरुष उन उत्तम और युक्तियुक्त बातों को भी केवल यह कह कर कि संस्कारविधि में उनका लेख नहीं बन्द कर रहे हैं। ऋषि दयानन्द जी कहाँ तक व्यवहार और शिष्टाचार की बातें लिखते जाते !

तीसरे वा चौथे दिन अस्थि चुनने के लिये प्रातःकाल मित्रमंडल वा सम्बन्धियों का आना आवश्यक है। यदि सब इकट्ठे हो कर हवन आदि के पश्चात् कुछ द्रव्य की सहायता दें, जैसा कि रिवाज है तो कई लोग इसको पुराने फैशन की बात कह कर बंद करना चाहते हैं, परन्तु "फेमिलीरिलिफ़ फन्ड" वा "कुटुम्ब सहायक भंडार" के सभासद् (मेम्बर) होना बुरा नहीं समझते।

शोक पालने की एक साधारण अवधि कम से कम ४ दिन तक की देशकालानुसार नियत करने की ज़रूरत है।

यह ठीक है कि स्त्रियाँ, पंजाब वा गुजरात की स्त्रियों के समान "स्यापा" न करें अर्थात छाती कूट कर रोवें पीटें नहीं। पर इन ४ वा दश दिन में यदि उन्हीं मन्त्रों की व्याख्या कोई धार्मिक पुरोहित कर के सुनाता रहे जिन मन्त्रों द्वारा कि मृतक संस्कार किया गया था वा इस के साथ वेद वा उपनिषदों की कोई व्याख्या की जावे तो अत्यन्त उचित है।

पृथ्वी के सब देशों में कुछ न कुछ शोक चिन्ह होतेहैं। युरोप में काला कपड़ा भुजा पर बांधना शोक का चिन्ह है। सब समाचारपत्र आज कल काली रेखाओं के अन्दर किसी मृत्यु का वर्णन करना समय के फैशन के अनुकूल समझते हैं। पर यदि किसी अंग्रेज़ी के प्रेमी आर्य सन्तान से कहा जावे कि ४ दिन तक बिना पगड़ी वा शिरोवेष्टन के रहना यही शोक चिन्ह है तो इसको "ओल्ड फेशन" कह कर टालदेते हैं। हमारा कभी लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं कि व्यर्थ पुरानी प्रथा की हर एक बात की पुष्टि करनी

चाहिये । पर शिष्टाचार और व्यवहार के उन नियमों को जो व्यर्थ नहीं पर पुराने हैं निर्मूल भी नहीं कर देना चाहिये ।

महर्षि दयानन्द जी पूर्ण रीति से जानते थे कि लोग अपनी बुद्धि से उचित व्यवहार की उपयोगी बातों को स्वयं ही करलेगें इस लिये उन्हों ने विस्तार से यह बातें वर्णन नहीं कीं ।

हिंदुओं में श्रीमान् लोग ऐसे शोक पर मृतककी कीर्ति वा अपने पुण्य के सच्चे भाव से दान किया करते हैं । उस में से दान का बहुत सा भाग दान पात्रों को नहीं मिलता महर्षि दयानन्द जी ने बड़ी दूरदर्शिता से इस संस्कार के अन्त में यह लिख दिया कि जो दान किया जावे वह इस प्रकार हो। "वेद विद्या, वेदोक्त धर्म का प्रचार अनाथ पालन, वेदोक्त धर्मोपदेशक प्रभृतिके लिये चाहे जितना धन प्रदान करें बहुत अच्छी बात है" यदि महर्षि दानसंबन्धी संक्षिप्त रीति से यह सूचना न कर जाते तो कदाचित् कई लोग मृतक के नाम पर वा स्वयं दान करने के लिये "संस्कार विधि" का लेख पूछते !

गुजरात देश में यह बहुत बुरी चाल है कि जवान, बूढ़े सब की मौत पर ज्ञाति को "जमनवार" अर्थात् मिठाई आदि का भोजन दिया जाता है। यह प्रथा सर्वदा बन्द होनी चाहिये । मारवाड़ में भी मौत पर न्यात भोजन वा "मौसर" (जमन वार) की प्रथा है, वह भी बन्द होनी चाहिये । इन जमनवारों में गरीबों के दीवाले निकल जाते हैं, इत्यादि कुरीतियाँ बन्द होनी ज़रूरी हैं।

कई नगरों और गावों में हमने देखा है कि मृतक के साथ नंगे पाँव जातेहैं और कई नगरों में जूते पहन कर जाने की प्रथा है हमारे विचार में काँटा, कंकड़, कीचड़,कींच तथा गर्मी आदि से बचने के लिये जूते पहन कर जाने की प्रथा अच्छी है आजकल बड़े २ नगरों में छतरी ले जाने की प्रथा जारी होगई है कई स्थानों में स्त्रियें और बच्चे भी श्मशान में जाते हैं कई जगह स्त्रियाँ घर से बाहर किसी कूप वा तालाब पर नहाने जाती हैं परन्तु श्मशान में नहीं जातीं गर्भिणी स्त्री का तो श्मशान में जाना भी ठीक नहीं । इसी प्रकार छोटे बच्चों का वा लड़के लड़कियों का जाना भी ठीक नहीं कई स्थानों में गावों के लोग गङ्गा के तट पर ले जाने के लिये बैलगाड़ी में मृतक रख बहुत कष्ट उठाते हैं जिस के उठाने की कोई ज़रूरत नहीं । कई प्रश्न करते हैं कि मुर्दे को स्नान कराने की प्रथा क्यों है ? इस के उत्तर में हम कहेंगे कि शरीर के नाना अंगों और रोम २ में मरने वाले का मल निकलता है, यदि मृतक शरीर के ऊपर पानी डाला जावे तो उसका वह मल बहुत कुछ जल बहा कर ले जा सकता है । यही

मृतक स्नान है। यह जरूरी नहीं कि हाथ से ही कोई मल २ कर उसके अङ्ग को धोवे यदि कहीं रगड़ने की ज़रूरत होतो एक छोटी सी लकड़ी को गोला कपड़ा बांध कर काम में लासकते हैं। इस के लिये अंगोछे [टुवाल] से शरीर को पोंछ डालते हैं। इस प्रकार का स्नान साधारण रोग से मरे हुए मृतक को कराया जाता है।

पर जो कोई महामारी [प्लेग] विष आदि के कारण मरा हो उस को वैद्य डाक्टर वा अनुभवी वृद्ध लोगों की अनुमति अनुसार यदि मृतक का नंगा करना वा स्नान कराना वा उस के कपड़े उतारना उचित न हों तो नहीं कराना चाहिये। ऐसे मृतक के ऊपर कम्बल, लोई वा शाल अथवा कोई ऊनी कपड़ा डाल देना और उस ऊनी कपड़े पर कपूर तथा जटामांसी (बालछड़) यथोचित डाल छोड़े और उठाते समय कम्बल सहित उसको उठा कर तख्ते वा गाड़े, वा गाड़ी आदि पर रखें। प्लेगादि से मरे हुए मृतक शरीर के उठाने वाले शिर के बालों से ले पग के नख पर्य्यंत सब शरीर पर भली प्रकार घी मललें, और कपड़े ऊन के बने हुए पहिने। अपने हाथों को कपूर से मललें और कपूर तथा बालछड़ अपने किसी पहिने हुए वस्त्र में ज़रूर रखलें जूता भी पहन लें। ज़रूरी है कि वह भूखे न हों थोड़ा सा घृत युक्त भोजन किया हुआ हो।

इस के साथ ही उन को अपने मन को दृढ़ करने की ज़रूरत है क्यों कि वैद्य और डाक्टर लोग कहते हैं कि:—

(१) जिन की इच्छाशक्ति प्रबल हो, वा जो मन में यह कहें कि हम को रोग नहीं लगेगा वह रोगियों की सेवा करते हुए स्वयं रोगी नहीं होते।

(२) पर इच्छाशक्ति एक अंग है। दूसरा अंग सावधानी अर्थात् अपने शरीर पर घी का मलना इत्यादि है जो ऊपर लिख आये वह सावधानी ज़रूर करें। यदि अपने शरीर पर मलने के लिये घी न मिल सके तो तेल मल सकते हैं।

प्लेग वाले मकान को शुद्ध करने के लिये ज़रूरी है कि अच्छी प्रचंड आग उस में जलाई जावे और उस के सब द्वार खुले रखे जावें। कुछ दिनों के लिये उस मकान में न रहें। प्लेग के दिनों में प्रत्येक सोने बैठने के गृहखंड (कमरे) से प्रचंड आग का जलाना और उस में घी, जटामांसी, धूप, गूगल का डालना उपयोगी है वा यह कहो कि इस सामग्री से युक्त बृहत् हवन गृह के प्रत्येक खंड में किया जावे। जहाँ कुछ न मिले वहाँ लकड़ियाँ ही जला छोड़ें।

अपूर्व वेदमन्त्र।

अन्त्येष्टि संस्कार करते हुए जो मन्त्र पढ़े जाते हैं, उन के अर्थों पर विचार करने से प्रतीत होता है कि वह कैसे अपूर्व मन्त्र हैं, आजकल

युरोप में विद्वान् इस वैदिक सिद्धांत को मान चुके हैं कि सत्यपदार्थ का नाश नहीं होता भौतिक पदार्थों की वास्तव में उत्पत्ति और मृत्यु नहीं होती रूपान्तर होने का नाम ही उत्पत्ति और मृत्यु है ऐसा वह जान गये हैं। इससे बढ़ कर वह नहीं अनुभव कर सके, पर इन वेदमंत्रों ने किस उत्तमता से दर्शाया है कि जीव आत्मा का नाश नहीं होता जोव ने यदि एक शरीर से संयोग छोड़ा है तो ईश्वर के नियामानुकूल और शरीर को प्राप्त होगा। थोड़े दिन हुए कि हमने एक पत्र में पढ़ा था कि युरोप में १००—१०० वर्ष के बुड्ढों के अनुभव यह कह रहे हैं कि वह इस अवस्था में भी मरना नहीं चाहते थे। यह अनुभव सिद्ध कर रहा है कि जीव नित्य है। बाल्यावस्था में खेल में आनन्द अनुभव होता था, यौवन में धन कमाने में, पर बुढ़ापे में वह दोनों आनन्द अनुभव नहीं होते, क्योंकि वह शारीरिक अवस्था के अन्तर्गत थे, उनकी स्मृति तो अनुभूति रूप से रहती है पर वह साक्षात् अनुभव के रूप में जरावस्था में नहीं रहते। यदि किसी भाव का साक्षात् अनुभव बाल, यौवन और जरावस्था में बराबर ताजा बना रहता है तो वह यही अनुभव कि "मैं हूं और मैंने मरना नहीं चाहा न मरना चाहता हूं"

हम बूढ़े होगये पर हमारा यह अनुभव कि "मैं हूं और मैं न मरूं" सदैव वैसा का वैसा ही बना रहा। यह बात दर्शा रही है कि आत्मसत्ता पर शरीर की वृद्धि क्षय का प्रभाव नहीं पड़ता। आत्मा नित्य है, सत्य है, इस लिये उस की सत्ता का साक्षात् अनुभव आयु भर प्रत्येक मनुष्य को एक रस रहता है।

यह आत्मा मलमूत्र रूपी शरीर में रह कर उस को नियम में रखता था। यही शरीर में चेतन सत्ता थी। मरने पर यह आत्मा अन्य शरीर अपने नियमानुकूल धारण करता है, इन दार्शनिक बातों का विधान इन मन्त्रों में अति उत्तम रीति से किया गया है। इन मंत्रों की पूर्ण व्याख्या के लिये २०० पृष्ठ भी कम हैं, इस लिये इस स्थान पर वह व्याख्या न करते हुए हम इस विषय की जिज्ञासा करने वालों को न्याय दर्शन और वेदान्त दर्शन पढ़ने और मनन करने की अनुमति देंगे।

उक्त मन्त्र जो श्मशान में पढ़े जाते हैं शोक निवृति के लिये भी अपूर्व मानसिक औषधि का काम देते हैं॥

इति अमृतसर निवासि श्री० म० आत्मारामकृता व्याख्या पूर्तिंगता ॥

शुद्धि पत्र

मङ्गलाचरण से

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	९	आनानां	अनानां
३	१५	उड़तेह	उड़ते हैं
४	१९	ऐश्वर्य को	ऐश्वर्य की
५	२	मीले	मीळे
६	१	सोमं	सोमं स्वस्ति
,,	१०	भवन्तु	स्वस्तये भवन्तु
,,	१३	आनन्द	आनन्द के
७	८	युञ्जियां	०
८	११	क्ति भि	क्तिभि
,,	२४	समुह	समूह
१५	१	यजत्रः	यजत्राः
१६	२४	बृहति	बृहती
१७	९	वरुण	वरुणौ
१७	२१	जिष्णु	जिष्णुः
१८	९	ग्रवाणः	ग्रावाणः
१८	२३	(शम्	(शम्)
१९	२	शमन्त	शम्
२२	२	शृणुा	शृणु
,,	५	देवहित	देवहितम्
२४	२३	लोका	लोक
२६ (नोटमें)		का० प्र०	क०—का०
३३	१७	संस्कारमें	संस्कार
३९	१४	स्विष्ठम्	स्विष्टम्
,,	१६	इत्त	दत्त
४०	१४	आली	[illegible]ी
,,	२१	पराजन्	राजन्
,,	२२	मृढय	मृडय
४१	८	वश्वे	विश्वे
,,	११	शस्तियाः	शस्तिपाः
५९	२५	जल का	नल का

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
६५	४	विद्धु	वृद्धि
,,	६	वेदों	ये दो
६६	९	ग्रस्ति	ग्रस्त
६७	१४	अग्नि	अग्नि को
६९	२७	दर से	दूर से
७२	२३	मर	भर
,,	२७	अठिध	अवधि
७४	१	बहुत	बहुत हों
६	५	यदस्य	यदस्य (२)
७	१५	स–य	समय

गर्भाधान के संस्कृत प्रमाणों का भावार्थ ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२	२३	पुष्करसजौ	पुष्करस्त्रजौ
३	१४	पृथिवी,	(पृथिवी,
३	३५	शत्र	शत्रु
४	३४	सीध	सीधे
४	३५	मल	मेल
७	३	उस	उस में पाते हैं
७	११	मनु	०
७	१३	मनुस्मृति में	०
७	३०	सूर्याअवलोकन	सूर्यावलोकन
८	१	वदारम्भ	वेदारम्भ
८	१	ता	तो
९	३२	ह	हैं
१०	२	पड़गी	पड़ेगी
१०	२	शद्रो	शूद्रों
१०	६	मुदे	मुर्दे
११	७	अछत	अछूत
१३	२२	वचा	बच्चा
१३	२३	झट	झूठ

शुद्धिपत्र ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१३	२४	झूट	झूंठ
१४	१	अग	अङ्ग
१४	९	थोड़े ही–	थोड़ेही दिनपीछे
१४	९	एज	एक
१४	१६	अष्टविधि–	अष्टविध
१५	१२	पृष्ठ	१ पृष्ठ
१६	५	क़दियों	क़ैदियों
१६	२१	लल	जल
१८	१३	डकटर	डाक्टर
१९	१	वाक्यामें–	वाक्यों में
१९	३३	पतिकर्स	पति कर्म
१९	३६	धस(डपटी)	धर्म ड्यूटी
२०	२४	सुगग्धि	सुगन्धि
२१	९	कर	करें
२२	१	कस	कर्म
२२	१४	वदमन्त्र	वेदमन्त्र
२२	३२	दता है	देता है
२३	२७	करतो	करेतो
२३	२८	ह	है
२४	१	काय	कार्य
२४	८	करलना	करलेना
२४	१४	खादिष्ट	स्वादिष्ट
२४	२०	पृथवी	पृथ्वी
२६	१५	हुए	हुए ही
२६	२७	ल	ले
२६	२९	सब भूत	सर्वभूत
२७	१३	चेष्ठाओं	चेष्टाओं
२७	१८	वसे	वैसे
२७	१४	सकोह	स को ह
२८	२३	कर	करें
३०	१	गभ	गर्भ
३१	१७	प्रजा	प्रजां
३१	१७	जनये	जनय
३१	१७	इन्द्राणाव	इन्द्राणीव
३१	१९	सत्र	सूत्र
३१	२४	स्तनभिः	स्तनूभिः
३१	३७	प्रांणा	प्राण्या
२	१	भवाथ	भावार्थ
३२	१	प०	पृ०
३२	२६	चा	बच्चा
३४	१४	सवौषधी	सर्वौषधी
३६	१४	कहवे	कहे
३६	२२	पत्नीकी	पत्नी के
३८	१	वीय	वीर्य
३८	३०	उत्पन	उत्पन्न
३८	३७	(१५३ पष्ठसेः)	(१५३ पृष्ठ)
३८	१०	करने हारी	करने हारा
४१	१४	म	गुप्त
४२	१	गभ	गर्भ
४५	१५	शब्दा	शब्दों
४५	२०	ज्योतीरग्रा	ज्योतिरग्रा
४७	१	क	के
४७	१२	[उपपसस्त्रे]	[उपप्रसस्त्रे]
४७	३०	स्वद्र हो	स्वद्रु हो
४७	३७	सन्पृचः	सम्पृचः
४७	३१	सूरीन्	सूरीन्
४७	३३	ऋ०	ऋ०
४८	१	वसे	वैसे
४९	७	जसा	जैसा
५०	८	उसको	उनको
५१	२९	व्यख्या	व्याख्या
५२	११	व	वह
५३	२२	नियम सं०३	०
५४	१	रोकन	रोकने
५४	१७	अर	और
५४	२४	द्रोल	द्राल

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
५४	२६	आतव	आर्तव
५५	१	वत्तमान	वर्त्तमान
५५	८	स्त्री को पुरुष	स्त्री का
५५	१६	अमक	अमुक
५५	३२	आतव	आर्तव
५५	३३	आयगण	आर्यगण
५६	३२	ह	हैं
५७	८	होरही	होरही है
५८	११	स्त्रा	स्त्री
„	३३	गभा	गर्भा
५९	२	शीघ्नता	शीघ्रता
६०	२७	यवा	युवा
६१	१६	ह	है
		ऐसे ही अन्त्र	
६१	३१	अनुलपनाद्	अनुलेपनाद्
६२	२९	भर्त्तु	भर्त्तुः
६३	१५	अथ	अर्थ
६४	१	एश्वय्य	ऐश्वर्य्य
„	५	निद्या	निन्द्याः
६५	२९	नकर	नकरे
६८	१	(अथ)	(अर्थ)
„	६	वीय	वीर्य
६९	१	वीय	वीर्य
„	३०	मर्थ	अर्थ
७०	१४	चलता है	चलाता है
७०	३४	वाला	वालों
७१	५	वसे	वैसे
„	३३	हीता	होता
७२	१	वणनकियाह—	वर्णनकियाहै
„	२०	वित्तितेश्टता-	वित्तऋतेश्रिता
„	३२	वीय	वीर्य
७३	१९	कलेगा	कर लेगा
७४	१३	यनान	यूनान

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
७५	१७	ब	वह
„	३२	पयन्त	पर्यन्त
७६	१	परुष	पुरुष
७७	१०	मेथुन	मैथुन

पुंसवन संस्कार मूल ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	५	कर	करे
„	१७	प्रजापविः	प्रजापतिः
२	३०	अश्व	आश्व
३	२४	मन्त्रा	मन्त्रे

पंसवन के संस्कृत प्रमाणों का भावार्थ

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	२८	पमासौ	पुंसासौ
२	१३	हे	हो
„	१७	स्त्रपूयम्	स्त्रैपूयम्
„	२१	(अचीक पत्)	(अचीक्लृपत्)
„	२७	उपस्यन्द्रिय	उपस्येन्द्रिय
३	२३	गभ	गर्भ
३	३४	पस्तक	पुस्तक
४	१०	सूत्र कर	सूत्र कार
„	१२	तीसर	तीसरे
„	„	निर्भरह	निर्भरहै
४	२४	अग्न्यधन	अग्न्याधान
„	३४	छोड़	छोड़े
४	३७	वसा	वैसा
५	७	गभ	गर्भ
६	१८	हदये	हृदये
७	१	पूण	पूर्ण
८	३५	गभ	गर्भ
		(ऐसे ही अन्यत्र)	
९	१४	(चक्षः)	(चक्षुः)
१०	२७	सामन	समान
१२	३४	ठहर	ठहरे

शुद्धिपत्र ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१३	१	श्रणी	श्रेणी
१६	१२	मरा	मेरा
१७	१	स	से
,,	५	उद्धत	उद्धृत
१८	२	हा	हो
,,	१४	शक्र	शुक्र
१८	३४	खिलाव	खिलावे
१८	२८	दुध	दूध
,,	३२	बर	बूरे
१९	६	हई	हुई

सीमन्तोन्नयन संस्कार सूल ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२	२	मल	मूल

सीमन्तोन्नयन की हिन्दी व्याख्या ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	२	गभिणी	गर्भिणी
,,	२६	मूलपष्ठ	मूलपृष्ठ
२	७	मनि	मुनि
४	२५	सत्र कार	सूत्र कार
६	१	म पति	मैं पति
,,	,,	पूण साक्षी—	पूर्ण साक्षी
,,	३	जाकि	जोकि
,,	,,	का	को
,,	१२	(सुभग)	(सुभगे)
,,	३३	सदव	सदैव
७	३४	लिय	लिये
९	६	जड़ा	जटा
१०	२८	सूय	सूर्य
,,	३२	यक्त	युक्त
११	१	वश्वानर	वैश्वानर
,,	१९	घतादि	घृतादि
,,	२८	धम	धर्म
१२	१	तल	तैल
,,	४	तल	तैल

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१३	„	बाला	बालों
१३	२१	आयुवेद	आयुर्वेद
१३	२३	चिन्हा	चिन्हों
१३	३०	मगे	नंगे
१४	३०	खिचड़ा	खिचड़ी
१५	२९	नदेखे !	देखे !
१५	३३	दष्ट	दृष्ट
१६	१	ह	है
१६	१	उद्दश्य	उद्देश्य
१६	३४	रखला	रखती
१६	३४	कृतकाय	कृतकार्य
१७	१	लना	लेना
१७	१	म	में
१७	१८	संक्षप	संक्षेप
१८	८	वच्च	बच्चे
१९	१३	हआ	हुआ
१९	२७	स्त्रा	स्त्री
१९	३३	सत्र	सूत्र
२१	१	दव	दैव
२१	१६	पूवजन्म	पूर्वजन्म
२१	१९	जसे	जैसे
२१	१९	निवृत्ति	निवृत्त
२२	४	पर्व	पूर्व
२२	३३	विपरीलीता वचराण होगी	विपरीता चरणवाली होगी
२२	३४	वद	वेद
२३	१	[हि०डि०] सीमन्त नयन	सीमन्तोन्नयन
२३	११	तपरया	तपस्या
२३	२५	देवानोॐ	देवानाॐ
२४	९	गृस्या श्रम—	गृहस्थाश्रम
२४	१८	सत्रादि	मन्त्रादि

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२४	२०	तल	तैल
२४	२१	वड़	वड़े
२४	२८	सुश्रत	सुश्रुत
२४	३२	उन्ननि	उन्नति
२५	१९	कत	कृत्य
२७	१९	कत	कृत्य
२६	१९	द्वितीय,	द्वितीय
		परशुराम,	परशुराम-
२६	४	मड़े	मूंड़े
जातकर्म संस्कार मूल ।			
३	१	क	के
३	२९	०	३०
४	२८	त्वापषे	स्वायुषे
५	१	का	को
		वनो	शृष्ववनो
जातकर्म संस्कार हिन्दी भाष्य की व्याख्या ।			
२	७	लिख हः—	लिखे हैं:—
२	८	मृद	मृदु
„	२५	बढ़ाम	बढ़ाने
८	१	आयुवद्धक	आयुवर्द्धक
„	३३	आयवृद्धि	आयुवृद्धि
१०	२२	वष	वर्ष
१०	२९	वद)	वेद)
„	„	म	मैं
„	१२	[सत्	[तत्
„	३४	पथ्वी	पृथ्वी
„	४	लए	लिए
१४	४	अत्युक्त	अनुयुक्त
„	६	[व]	[वै]
१४	३१	पराने	पुराने
१५	१	सदव	सदैव
१५	३२	स्पश	स्पर्श
१५	३४	म	मे
१६	१९	[जषस्व]	[जुषस्व]
१६	३३	व	वै
१७	२५	बच्च	बच्चे
१८	२५	सांहता	संहिता
१९	१	अथ	अर्थ
१९	३	वदिक	वैदिक
१९	२६	जकाम	जुकाम
१९	३४	मिंडल	मंडल
२१	१७	ज्ञानयों	ज्ञानियों
२३	२४	सत्रकार	सूत्र कार
२४	११	कर	करे
२६	३०	कटी	कुटी
२६	३१	मंग	मूँग
२८	९	पर्व	पूर्व
२८	१६	प्रसत	प्रसूत
२८	२१	लोह	लोहू
२९	१	कोयल	कोयले
नामकरण संस्कार मूल ।			
१	२३	अथ	अर्थ
२	१४	ओंप्रतिपदे(१)-	ओंप्रतिपदे
३	२	लेक	लेके
नामकरण व्याख्या ।			
१	१४	(सक्षेत)	(समीक्षेत)
१	२५	अयज	अयुज
२	४	जुप्तान्त	गुप्तान्त
२	५	धनसंयुक्त-	धनसंयुक्त
३	१	संस्कार तथा-	संस्कृत तथा
३	५	सगमता	सुगमता
३	५	यक्त	युक्त
३	८	सनने	सुनने
३	२२	शाक	शोक
४	१२	हा	ही
४	२४	भावपर्ण	भावपूर्ण
४	३०	गृह वद्य	गृह वैद्य

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
५	२७	रवाहेब	साहेब
७	१	बठे	बैठे
७	४	हासकती—	हो सकती
८	३०	ह	हैं
९	३४	यक्ति	युक्ति
१०	१३	स्पश	स्पर्श
१०	१५	हो जाताह—	होजाते हैं
११	४	आय	आयु

निष्क्रमण संस्कार सूल ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	१	जा	जो
२	१५	शद्ध	शुद्ध

हिन्दीभाष्य की व्याख्या ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२	५	शक्लपक्ष	शुक्लपक्ष
२	१४	शद्ध	शुद्ध
३	१	हदय	हृदय
३	१५	सूंघताहं	सूंघता हूँ
३	२८	आर	और
५	(हेडिंग)	हिकी	हिन्दी
५	१०	आव !	आवे !
६	९	पड़गा !	पड़ेगा !

अन्नप्राशन संस्कार सूल ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	६	त्रादि	सूत्रादि
२	१८	बक्ष	बृक्ष
३	२०	पदाथ	पदार्थ

चूडाकर्म सूल ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	२१	अथ	अर्थ
२	१	दानों	दोनों
२	२	पोल	बोल

संस्कृत तथा हिन्दी व्याख्या

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	३०	राग	रोग
३	३१	स	से
५	१४	उद	उर्द
६	१०	(क्षरेण)	(क्षुरेण)

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
६	१८	मली	मैली
७	१	पूंछ	पूंछे
७	१	कपड़	कपड़े
७	२२	कशों	केशों
७	२२	(वपतु)	(वपतु) काटे
७	२५	(चत्तषे)	(चत्तुषे)
७	२९	(क्षरा)	(क्षुरा)
८	२८	सन्दर	सुन्दर
९	१	चाक	चीक
९	१	उठग	उठेंगे
९	२२	यज्ञ	यजु०
१०	१८	छरे	छुरे
११	२३	स्याना	स्यानी
१२	२३	आय	आयु
१३	२०	मंडन	मुंडन
१३	२०	पूरस	पूर्व
१५	२६	दभ	दर्भ
१५	२६	छने	छूने

कर्णवेध संस्कार की व्याख्या ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	१	गृह्यसत्र	गृह्यसूत्र
१	२४	प्रवश्य	प्रवेश्य
२	१	सूय	सूर्य
२	११	अंडबद्धि	अंडवृद्धि
२	२४	जा	जो
२	२७	अंगठ	अंगूठे
३	८	वींधन	वींधनेसे
३	१०	हाता है	होता है
३	१७	सनो	सुनो
४	३१	[illegible]ठे	बैठे
५	३१	वद्ध	वृद्ध
६	१	वद	वेद
६	१	म	में

उपनयन सूल ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२	१६	यज्ञपवीतं	यज्ञोपवीतं

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२	३०	सख	सुख
३	२८	इसक	इसके
६	१०	आचाय	आचार्य

संस्कृत भाषार्थ

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	१६	निमलता	निर्मलता
२	८	[ब्रह्मचयम्]	[ब्रह्मचर्यम्]
२	१०	जला !	जलो !
२	२३	सवात्पादक	सर्वोत्पादक
३	१९	पूववत्	पूर्ववत्

उपनयन संस्कृत० व्याख्या ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	१३	दानों	दोनों
१	१४	शलाकहनेका	शैलीकहनेका
२	९	स्कलों	स्कूलों
३	१४	गढ़	गूढ़
३	२४	९	८
३	२४	९	८
३	२६	९	८
३	२६	९	८
४	२१	दती	देती
४	२९	दसरा	दूसरा
६	७	रह	रहे
७	३२	कि	०
९	१२	म	में
९	२०	छड़ाता	छुड़ाता
११	१८	कार्य्या का	कार्य्यों का
११	१९	का	को

वेदारम्भ संस्कार मूल ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२	१६	सर्यो	सूर्यो
३	१	कंध	कंधे
३	७	भगर्गो	भर्गो
३	१४	दःखों	दुःखों
४	४	दा	दो
४	२१	भूाम	भूमि
४	२१	स	से

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
४	२१	केशा	केशों
६	९	हाम	होम

वेदारम्भ संस्कृत भाषार्थ ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
८	११	वाल	वाले
८	२४	त	तू
८	२७	जा	जो

वेदारम्भ व्याख्या ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१२	३	जनश्रति	जनश्रुति
१६	४	युराप	युरोप
१७	१८	पकार से	प्रकार से
”	२४	सचन	सेचन
१९	१३	वाप्य	वाष्प
”	३१	पर्ण	पूर्ण
”	२९	नहां	नहीं
”	”	म	में
२३	५	उसके	उनके
२४	४	पर्व	पूर्व
”	८	सनना	सुनना
२९	१	वाला	वाली
”	४	आतो	आंतों
”	१९	व्यथ	व्यर्थ
”	२६	वच	वचे
३०	१५	मंज	मुंज
”	३०	नहां	नहीं
३३	२२	दसरे	दूसरे
३६	३	ह	है
३६	१०	यरुप	यूरुप
३६	१०	व लोग	वे लोग
३६	१०	सतान	सन्तान
३६	१६	अग	अङ्ग
३६	२४	वष	वर्ष
३९	९	कर	कूकर
४३	१४	वाल	वाले
४४	२१	कद	कूद

शुद्धिपत्र ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
४४	३	यरूप	यूरूप
४४	९	बोलन	बोलने
४७	३	समाप	समीप
४७	१९	यक्त	युक्त
४८	२४	शभ	शुभ
५०	३१	मन्त्रा	मन्त्रों
५१	३२	आंखा	आँखों
५२	१७	नसार	नुसार
५३	३०	ठाक	ठीक
५४	११	तल	तैल

समावर्तन संस्कार मूल

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	४ [नोट]	वत	व्रत
२	१८	बठ	बैठ
,,	२६	घड़	घड़े
३	१०	बाल	बोल
३	१५	वरण	वरुण
३	२०	भृण्ण	भृष्णु
४	४	गृ० स०	गृ०सू०

समावर्तन—संस्कृत० व्याख्या ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
७	१५	पित	पितृ
७	२५	यशोधास्य	यशोधास्यै
७	२८	संयक्त	संयुक्त
८	१	पुष्पा	पुष्पों
८	१७	वाल	वाले

समावर्तन सं० व्याख्या ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
९	१२	आदमिया	आदमियों
११	१०	ओर का	ओर को
११	१४	हा सकेगा	हो सकेगा
११	१६	गह·········	गृह·········

समावर्तन संस्कार व्याख्या ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१२	१०	राहत	रहित
१२	२५	शरार	शरीर
१३	२	बड़	बड़े
१४	२	अग्नि	अग्नि
१४	८	दुरुपयोग और	और दुरुयोग
१७	३३	होता	हो तो
१८	८	पा वेष्टन	पादवेष्टन
२२	३३	एक	किये
२२	१ [नोट में]	वद्य	वैद्य
२३	१४	पर	पैर

मूल विवाह संस्कार—

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	१७	उत्तमहो	उत्तम हो
१	१८	आय	आयु
१	१९	वाले हा	वाले ही
१	२४	सत्यतद	सत्यंतद्

अन्त्येष्टि प्रकरणम् ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
४६	९	प्रपा	प्राण

अन्त्येष्टि सं० व्याख्या—

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
४७	५	युपरो	युरोप
४७	१३	अंग्रेजी का नोट नीचेचाहिये	
४८	२६	विषवाशक	विषनाशक

इति ।

विशेष प्रार्थना—

प्रिय वाचकवृन्द ! इस शुद्धि पत्र के अनन्तर्भूत भी, जो हिन्दी भाषा की मात्राओं की और ` की अशुद्धियाँ हैं, वे सहज ही में ध्यान में आ जावेंगी और जो मन्त्रादि में कोई रह गई होंगी वे भी तत्तत् निर्दिष्ट स्थानों पर देखने से दूर हो सकेंगी—इस प्रेस की निर्बलता को अब की वार क्षमा कीजिए ।

सलज्ज—विनीत—संशोधक ।

मिलने का पता—

भीमसेन शर्म्मा, महाविद्यालय, ज्वालापुर,
ज़िला सहारनपुर U. P.